महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : १९
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्: आश्विन शुक्ल २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

अक्टूबर प्रथम २०२०

अनुक्रम

०१. परोपकारी पत्रिका: आर्यसमाज ...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५७	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. पुराणों की अवैदिकता	मुनीश्वरदेव	१३
०५. आर्यजगत् के समाचार		१९
०६. साधक, बुद्धि और विवेक का...	कन्हैयालाल आर्य	२०
०७. संस्था-समाचार	ब्र. रोहित आर्य	२३
०८. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	२९
०९. संस्था की ओर से...		३१
१०. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

परोपकारी पत्रिका : आर्यसमाज के लिए योगदान

किसी भी समाज या संगठन के बीजवपन, स्थापना और गति-प्रगति का प्रेरक आधार कोई 'विचार' हुआ करता है। विचार में वह शक्ति होती है कि वह व्यक्ति से लेकर विश्व तक को बदल सकता है। संसार में जो भी संगठन, समाज या सम्प्रदाय बने हैं, उनके अपने-अपने विचार रहे हैं, जिनको उद्देश्य भी कहा जाता है। उन विचारों को स्थायित्व प्रदान करने के लिये माध्यम साहित्य होता है। पत्र-पत्रिकाएँ भी उसी साहित्य की लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज नामक संगठन के भी ऋषि ने कुछ उद्देश्य, नियम, कर्त्तव्य या सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। अपनी स्थापना से लेकर आर्यसमाज एक पठित और जागरूक संगठन रहा है। अत: आर्यसमाज का पहले-पहल जो विस्तार हुआ उसमें साहित्य-लेखन एवं पत्र-पत्रिकाओं की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू और क्षेत्रीय भाषाओं में पर्याप्त संख्या में पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रहीं हैं। शायद ही किसी एकदेशीय संगठन की इतनी पत्रिकाएँ रहीं हों। पत्रिका आर्यसमाज की एक सक्रिय विधा रही है। उस विधा में महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी एवं स्थानापन्न परोपकारिणी सभा अजमेर की पत्रिका 'परोपकारी' का स्मरणीय और विशेष स्तरीय योगदान रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अनेक प्रकार की समस्याओं और बाधाओं को झेलते हुए भी अपने स्तर को बनाये रखकर यह पत्रिका आर्यसमाज के लिए वरदान के रूप में प्रस्तुत होती आ रही है। महर्षि दयानन्द के सन्देश का प्रचार-प्रसार करने में यह सदा तत्पर रही है और अब भी है। उसका श्रेय पत्रिका के सम्पादकों, लेखकों और अधिकारियों को जाता है, जिन्होंने इसकी निरन्तरता, सक्रियता एवं सैद्धान्तिकता को बनाये रखा है। वैसे परोपकारी पत्रिका के सभी लेखक और पाठक जागरूक आर्यजन हैं, किन्तु इस आलेख में ऐसे कुछ सन्दर्भों/ स्तम्भों को आर्यसमाज के इतिहास के साक्ष्य हेतु स्मरण किया जा रहा है जो इसकी अपनी अनन्य विशिष्टताएँ रहीं हैं।

परोपकारी पत्रिका अपने निरन्तर प्रकाशन के गौरवशाली ६० वर्ष पूरे कर चुकी है। वैसे इसका प्रथम बार प्रकाशन सन् १८८९ (कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९४६) में षाण्मासिक पत्रिका के रूप में आरम्भ हुआ था, किन्तु दो अंक प्रकाशित होकर बन्द हो गई। इन अंकों के सम्पादक सभा के उपमन्त्री पं. मोहनलाल पण्ड्या थे। १९०६ में महात्मा मुंशीराम (संन्यास नाम स्वामी श्रद्धानन्द) के प्रस्ताव पर फिर इसका मासिक प्रकाशन आरम्भ हुआ। पहले वर्ष इसके सम्पादक श्री भक्तराम उपमन्त्री सभा थे। दूसरे वर्ष से इसके सम्पादक प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार और पत्रकार पं. पद्मसिंह शर्मा बने। इनके सम्पादकत्व में आठ अंक ही प्रकाशित हुए। तीसरे वर्ष फिर श्री भक्तराम के पास सम्पादक का दायित्व आ गया। किन्तु छह अंकों के बाद फिर पत्रिका बन्द हो गयी।

सभा ने नवम्बर १९५९ में तीसरी बार फिर से सभा मन्त्री डॉ. मानकरण शारदा और संयुक्त मन्त्री श्री श्रीकरण शारदा के सम्पादन में परोपकारी का प्रकाशन आरम्भ किया। १९७३ में आर्य साहित्यकार डॉ. भवानीलाल भारतीय इसके सम्पादक बने।

परोपकारी के सम्पादकों में स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर ऐसे सम्पादक रहे जिन्होंने किसी भी सामाजिक संस्था की पत्रिका के सुदीर्घ सम्पादन का रिकॉर्ड अपने नाम किया है। उन्होंने १९८३ से लेकर २०१६ तक ३३ वर्ष तक परोपकारी का सम्पादन किया। क्योंकि यह सभा महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत उद्देश्यों, सिद्धान्तों की रक्षा एवं प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित है, अत: डॉ. धर्मवीर इनके लिए सदा सतर्क और संघर्षशील रहते थे। ऋषि दयानन्द, परोपकारिणी सभा और आर्य सिद्धान्तों के हित के विरुद्ध कभी समझौता नहीं किया, चाहे उसके लिए उन्हें कितना ही संघर्ष करना पड़ा, चाहे कितना ही विरोध सहना पड़ा है। उनकी कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं देखा गया। जिस बात को उचित माना उसको निडर होकर किया और जिसे अनुचित माना उससे दूर रहे। अपने सम्पादकीय लेखन में उन्होंने आर्यसमाज से सम्बद्ध, राष्ट्र और समाजोपयोगी विषयों को ही प्रमुखता दी। आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द, गुरुकुल-शिक्षा, सत्यार्थ प्रकाश, आर्य विद्वानों, कार्यकर्ताओं एवं नेताओं का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण, पाखण्ड-खण्डन, वेदों और योग का महत्व, विरोधियों द्वारा धर्मान्तरण, संस्कृत-हिन्दी भाषाओं की उपादेयता तथा अंग्रेजी का दुष्प्रभाव आदि उनके सम्पादन के प्रमुख विषय रहे। ऋग्वेद के 'मृत्यु-

सूक्त' पर दिये गये प्रवचन आज भी प्रत्येक अंक में लेखमाला के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। उसके छप्पन लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पाठक आज भी उनके लेखों को पढ़ना चाहते हैं। पाठकों की मांग पर उनके लेखों के सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे हैं- 'कहाँ गये वो लोग', 'अंग्रेज जीत रहा है', 'स्तुता मया वरदा', 'काल की कसौटी पर', 'सत्यार्थ प्रकाश में क्या है?' 'ज्ञानामृत' में प्रवचन-संग्रह, बेताल फिर डाल पर।

डॉ. धर्मवीर एक सुलझे हुए लेखक, हृदयग्राही वक्ता और निःस्वार्थ भाव से सर्वात्मना परोपकारिणी सभा तथा आर्यसमाज के लिए समर्पित वैदिक विद्वान् थे। डॉ. धर्मवीर जी के कार्यकाल में पत्रिका ने विशेष उन्नति-प्रगति की। वह मासिक से पाक्षिक हो गई और प्रसार संख्या चौदह हजार तक पहुँच गई। ६ अक्टूबर २०१६ को उनके अप्रत्याशित निधन ने उनको हमसे सदा के लिये छीन लिया।

अक्टूबर द्वितीय २०१६ से दिसम्बर प्रथम २०१८ तक सम्पादक का कार्य डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा (वर्तमान संयुक्त मन्त्री सभा) ने संभाला। डॉ. शर्मा भी शिक्षा-क्षेत्र और आर्यसमाज से संबन्धित व्यक्ति हैं। दिसम्बर द्वितीय २०१८ से इस दायित्व का निर्वहन मैं कर रहा हूँ। मेरा मानना है कि परोपकारी पत्रिका समाचार-विशेष की पत्रिका नहीं है अपितु महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों को संरक्षित रखते हुए उनको आगे प्रसारित करनेवाली तथा अपने धर्म, संस्कृति-सभ्यता के प्रति जागृति उत्पन्न करने के लिये संचालित पत्रिका है।

पत्रिका में आर्यसामाजिक विषयों में योगदान करने वाले लेखकों में प्रोफेसर राजेन्द्र जी 'जिज्ञासु' को आर्यसमाज के इतिहास में सर्वदा स्मरण रखा जायेगा। वे आर्यसमाज के इतिहास के ज्ञानकोश हैं। उनकी स्मृति अद्भुत हैं। श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' परोपकारी में दीर्घावधि लेखस्तम्भ के जाने-माने लेखक हैं। 'जिज्ञासु' जी का मानना है कि समाज के लिये समर्पित भाव से कार्य करने वाले विद्वानों, संन्यासियों, कार्यकर्त्ताओं, कवियों, अधिकारियों आदि का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना चाहिये और उनके जीवनवृत्त प्रकाशित होकर आर्यजनों में प्रसारित होने चाहियें। जिस संगठन में अपने समर्पित लोगों के प्रति कृतज्ञता भाव नहीं होता, वह संगठन आगे नहीं बढ़ता। उनका 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' शीर्षक स्तम्भ मार्च २००२ से प्रारम्भ हुआ और आज भी चल रहा है। उनका ऐसा प्रभाव रहा है कि वह आर्यसमाज में वस्तुतः ही कभी तड़प और कभी झड़प का विषय बनता रहा है। आर्यसमाज विषयक संचित पीड़ाओं का वह ऐसा गिरि-निर्झर है जो आज भी अविरल रूप से प्रवहमान है। कभी भूले-बिसरे आर्यों के जीवनवृत्त खोज लाना, कभी विस्मृत आर्य कवियों-शायरों के भूले काव्यों की जानकारी देना, तो कभी अतीत के अंधियारे में खोये संस्मरणों की याद दिलाना, कभी चुटीले व्यंग्य, तो कभी चुटकी, कभी सिद्धान्तविहीनता पर बिना लाग-लपेट के रोष-आक्रोश जताना, तो कभी इतिहास-प्रदूषण पर ध्यान आकर्षित करना। ऐसी विषयवस्तु ने इस स्तम्भ को ध्यानाकर्षक बना दिया और उसके साथ ही परोपकारी को भी लोकरुचि पत्रिका बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रोफेसर राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का जोश उनके वक्तृत्व काल में उनके अंग-अंग से छलकता है, किन्तु लेखन में वही जोश उनकी कलम से कागज पर उभरता है। वे आर्य सिद्धान्त और आर्य इतिहास विषयक दो सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक-संपादक हैं, जिनका सानी आर्यसमाज में अन्य कोई नहीं है।

स्वाध्यायी आर्यजनों को अनेक जिज्ञासाएँ होती रहती हैं। उनके लिए जिज्ञासा या शंका-समाधान लेखस्तम्भ शास्त्रीय ज्ञानवर्धक विशिष्ट स्तम्भ कहा जा सकता है। आर्यसमाज में अन्य किसी पत्रिका ने ऐसी ज्ञान चर्चा इतनी दीर्घावधि तक उपलब्ध नहीं करायी है। इस स्तम्भ को सभा के गुरुकुल के तत्कालीन आचार्य श्री सत्यजित् ने प्रारम्भ किया और अप्रैल २०११ से मई २०१३ तक इसको आगे बढ़ाया। उसके उपरान्त अप्रैल २०१७ तक इस दायित्व का निर्वहन वैदिकवक्ता आचार्य सोमदेव ने किया। मई २०१७ से अक्टूबर २०१९ तक वैदिक विद्वान् डॉ. वेदपाल (वर्तमान सभा प्रधान) ने पाठकों की शंकाओं का समाधान किया। इस प्रकार यह स्तम्भ पाठकों में स्वाध्याय एवं सिद्धान्त-प्रचार के सशक्त माध्यम के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उच्च कोटि के विद्वानों आर्यसमाज और शास्त्रीय शोधपरक उत्कृष्ट लेख जितने परोपकारी में प्रकाशित किये जाते हैं उतने आर्यसमाज की बहुत कम पत्रिकाओं में मिलते हैं। सभा की प्रकाशन अधिकारी श्रीमती ज्योत्स्ना द्वारा पिछले लगभग चार वर्षों से 'ऐतिहासिक कलम से' शीर्षक में स्मृतिशेष उच्च विद्वानों और आर्यनेताओं के वे लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं जो अत्यधिक ज्ञानवर्धक और प्रेरक हैं, जो साधारण पाठकों को पढ़ने को नहीं मिल पाते। इस प्रकार परोपकारी पत्रिका महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट कर्तव्यों का यथाशक्ति पालन कर रही है और आर्यसमाज के लिए अग्रगण्य योगदान कर रही है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रवचनमाला-७१

मृत्यु सूक्त-५७

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूप वञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।।

हम इस वेद-ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त जिसे मृत्यु सूक्त कहते हैं उसके ११ वें मन्त्र पर विचार कर रहे हैं। हमारी मौलिक समस्या है कि प्रथम **व्यक्ति कैसे जन्म लेता है, पहली बार मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ है, पहली बार कोई चीज कैसे बनी है।** ११ वें मन्त्र में इसका उत्तर है।

हमारे लिये पहली बार बनना बड़ा महत्त्व रखता है। आप जीवनभर चलते हैं, कोई नहीं कहता कि आप चलते हैं और यह आपकी विशेषता है। लेकिन जब माता-पिता पहली बार बच्चे को चलते हुए देखते हैं तो कहते हैं कि देखो आज हमारा बच्चा चल रहा है, हमारा बच्चा आज बैठा है, हमारा बच्चा आज पहली बार बोला, हमारा बच्चा पहली बार हँसा। यह जो पहली बार जो कुछ हो रहा है। यह प्रारम्भ मुख्य है, बाकि क्रिया तो क्रिया से हो रही है। लेकिन पहली क्रिया कैसी हो रही है यह हमारी समस्या है। आगे तो एक चक्र है, चल रहा है। उसने अगले को उत्पन्न किया, उसने अपने बाद वाले को उत्पन्न किया- ऐसा चल रहा है। लेकिन पहली बार किसी ने कैसे चलाया? आप कहते हैं कि इंजन अपने आप चलता है, लेकिन पहले आप बटन दबाते हैं, फिर चलता रहता है। उसके संचालन का जो प्रथम चरण है वह कैसे होता है, इस बात का उत्तर इस मन्त्र में दिया गया है। इसमें कहा, **उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा निबाधथाः** हे पृथिवी माता! हमारे लिए बाधक मत बनो। तुम हमारे लिये माँ की तरह कोमल हो जाओ। अब पृथिवी की कोमलता का यहाँ सम्बन्ध क्या है? सम्बन्ध यह है कि यदि आप पृथिवी में बीज बोते हैं और ऊपर की जमीन कड़ी हो जाती है तो बीज नहीं उग सकता। बीज को उगने के लिए अन्दर पानी चाहिये। लेकिन उसके बाद जब उसका अंकुरण होने लगता है और वह बाहर आना चाहता है तब पृथिवी नरम होती है तो ही अंकुर बाहर आ पाता है, ज्यादा कठिन होती है तो उग ही नहीं सकता है। इसलिये पिछले मन्त्र में कहा था- यह पृथिवी जो ऊर्णम्रदा- जैसे ऊन का गोला नरम होता है, ऐसी ही यह पृथिवी युवती है। जो ऊपर से ऊन के गोले के समान कोमल है और वह हमारी उत्पत्ति का कारण है।

इस मन्त्र में कहा गया- **माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि**- अब इसमें दो बातें विशेष रूप से कही गयी हैं-एक बात यह कही गयी है कि पृथिवी उसे उत्पन्न करती है और उसका पालन भी करती है, इसका उदाहरण माँ से दिया है। जैसे माँ एक बच्चे को उत्पन्न करने के बाद उसका पालन करती है। आप एक कल्पना कीजिये एक माँ जो अपने बच्चे को लेकर बैठी है, उसका पालन करने का आश्रय है माँ का दूध। वह केवल दूध ही नहीं पिलाती है बल्कि अपने आँचल से बच्चे को ढक भी देती है, उसका संरक्षण भी करती है। यहाँ कितनी सुन्दर उपमा दी गई है **'माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनम् भूम ऊर्णुहि'**। हे भूमि माँ! जैसे माँ अपनी सन्तान को अपने दूध से पुष्ट करती है और अपने आँचल से सुरक्षित करती है, वैसे तुम भी इस जीव को अपने उत्पन्न पदार्थों से पुष्ट करो और इसकी रक्षा करो।

दो बातें इस मन्त्र में बड़ी रोचक कही गयी हैं। (१) सूपायनास्मै भव सूप वञ्चना, दो विशेषण हैं **सूपायना** -

यह **सूपायना** शब्द पहले भी आ चुका है, हम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त पर विचार करते हुए इस पर विचार कर चुके हैं। वहाँ मन्त्र था- **स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव**। हे परमेश्वर! तुम इस जीवात्मा के लिये, हमारे लिये सहज, सरल, प्राप्तव्य हो जाओ। **सूपायनो भव** अच्छी तरह से मिलने योग्य बन जाओ, सहज प्राप्त होने योग्य बन जाओ। उसका उदाहरण दिया था **स नः पितेव सूनवे** जैसे एक पिता एक सन्तान के लिए सुलभ होता है। पिता के पास उसकी पहुँच सहज होती है। वैसे ही यहाँ कहा-हे भूमि माँ! इसको सिंचित भी कर दे, पोषित भी कर दे, पुष्ट भी कर दे, इसको ढक भी दे, इसकी सुरक्षा भी कर दे। तो यह पृथिवी भी उसी तरह से सुरक्षित करती है जैसे माँ अपने बालक को सुरक्षित करती है। भूमि को माँ कहते हैं। वास्तव में भूमि तो माँ ही है और हमारी ही नहीं सारी दुनिया की, सारी दुनिया के पदार्थों की, सारे जीवनों की, सारे पशु-पक्षियों की, मनुष्यों की, कीट-पतंगों की, चाहे और कोई प्राणी किसी भी रूप में इस संसार में विद्यमान हो, उन सबकी उत्पत्ति का आधार यह भूमि है यह पृथिवी है।

इसलिये हे भूमि माँ! तुम हमारे लिए सहज प्रापणीय हो जाओ। अग्नि सूक्त में कहा था **सूपायना भव**, वहाँ परमेश्वर के लिए कहा था, यहाँ पृथिवी के लिए कह रहे हैं **सूपवञ्चना** हमारी रक्षा करने वाली बन जाओ। जो हमारे ऊपर बाधायें हैं, रुकावटें, विघ्न हैं, दुःख हैं उनसे हमको बचानेवाली बन जाओ।

यह मन्त्र हमारी एक समस्या का समाधान कर रहा है और वह बड़ी भारी समस्या है कि पहली बार कैसे हुआ। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि छोड़ो, जो है उसको देखो। लेकिन मनुष्य का मन जिज्ञासु है, वह छोड़ने पर भी फिर उसे पकड़ लेता है फिर सोचने लगता है। उत्तर हमें कहाँ मिलेगा और कैसे मिलेगा? वह इस मन्त्र में दिया गया है। पहली बार संसार की उत्पत्ति कैसे हुई, वेद में इस सिद्धान्त को कहते हैं 'अमैथुनी सृष्टि'। माता-पिता के संयोग से होने वाली सृष्टि तो वर्तमान सृष्टि है। चाहे कोई भी प्राणी क्यों न हो, वह माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होता है। लेकिन जब सृष्टि का प्रारम्भ था तो परमेश्वर का तो कोई शरीर है नहीं। यदि आप उसे पिता मानें भी, हम मानते भी हैं तो वह पिता तो इसलिए नहीं बन सकता क्योंकि वह इस शरीर से बड़ा है, पृथिवी से भी बड़ा है समस्त संसार ईश्वर का शरीर है, अतः जितने भाग में पृथिवी है, परमात्मा के उतने अंश का शरीर पृथिवी बन जाएगी। लेकिन ईश्वर तो इस संसार से भी बड़ा है, इतना बड़ा शरीर तो बना नहीं। हाँ, इतना शरीर बन गया कि जितने में पृथिवी है।

इसमें एक रोचक परेशानी और आ सकती है। यदि आत्मा से चैतन्य है तो संसार के सारे पदार्थों में परमात्मा तो विद्यमान है फिर इनमें चेतनता क्यों नहीं है? जैसे जीवात्मा के होने से इस शरीर में चैतन्य है तो क्या परमात्मा के होने से इस पृथिवी में चैतन्य नहीं है? है। इस चैतन्य और उस चैतन्य में अन्तर क्या है? हमको यह चिन्ता सताती है कि जब चेतन जीव से यह शरीर चेतन हो उठता है तो यह संसार भी क्यों नहीं चेतन हो उठता? चेतन तो हो उठता है, क्योंकि इसके अन्दर नियम दिखाई देते हैं। इसके नियम बता रहे हैं कि इस के अन्दर चेतना है, फिर मेरी चेतना से उसकी चेतना का सम्बन्ध क्यों नहीं बनता? जैसा मैं हूँ वैसा यह पहाड़ क्यों नहीं बोलता? वह इसलिए नहीं बोलता कि वह आत्मा इस शरीर से बड़ा है। यह शरीर मेरी आत्मा की आवश्यकता है, लेकिन संसार परमेश्वर की आवश्यकता नहीं है, इसलिए उसे इस तरह के साधन चाहिये ही नहीं। हमारे साधन हमारी दुर्बलता के प्रतीक हैं, हमारी योग्यता, सम्पन्नता, शक्तिमत्ता के प्रतीक नहीं हैं। समाज में एक विचित्र परिस्थिति है, एक व्यक्ति के पास साइकिल है, एक व्यक्ति के पास कार है, तो आप कहते हो कार वाला सम्पन्न है। जिसके पास १० कार हैं वह और भी ज्यादा सम्पन्न है। जिसके पास एक मकान है वह सम्पन्न है, जिसके पास १० मकान हैं वह ज्यादा सम्पन्न है। हमारी जो भौतिक सम्पन्नता व दरिद्रता है वह वस्तुओं से, साधनों से, सामान से जुड़ी हुई है। किन्तु यह सम्पन्नता यह बताती है कि वास्तव में हम दरिद्र हैं, साधन मिले हैं तो सम्पन्न बने हैं। साधन मिलना हमारी अयोग्यता का प्रमाण है। जो नहीं है हम उसे पा रहे हैं, उसे पाना चाहते हैं। जहाँ आवश्यकता ही नहीं है, वहाँ इनका मूल्य क्या होगा? मेरे पास कम्बल है और गर्मियों के दिन हैं, मुझे

उसका कितना मूल्य दिखाई देगा? लेकिन वही कम्बल सर्दियों के समय मिल जाये तो? यहाँ जो मेरे साधन हैं वे मेरी दुर्बलता के द्योतक हैं इसलिए मुझे इन्हें रखना पड़ता है। परमेश्वर को इन्हें नहीं रखना पड़ता और इससे परमेश्वर का कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, कोई आवश्यकता पूरी नहीं होती इसलिए दोनों में चैतन्य तो है। जैसे मैं इस शरीर को मानता हूँ कि यह जड़ है, लेकिन आत्मा के कारण इसमें चैतन्य है तो वैसे ही संसार के समस्त पदार्थ जड़ हैं, परन्तु इसमें परमात्मा का चैतन्य हर जगह दिखता है और वह परमात्मा ही संसार को क्रियान्वित करता है, चलाता है। इसको जब हम समझते हैं तो हमको यह अन्तर समझ में आना चाहिये कि मैं जिस चेतना की अपेक्षा शरीर में करता हूँ यह मेरी आवश्यकता है और संसार में उस ईश्वरीय चेतना को इन पदार्थों की, इन अंगों की, इन इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। परमेश्वर की आत्मा का संसाररूपी शरीर उसकी आवश्यकता नहीं है। दोनों जो अन्तर हैं, यही अन्तर हमको दिखाई देते हैं।

इस शरीर से सब कुछ मैं अपने लिये करता हूँ। आँखों से मैं अपने लिये देखता हूँ, हाथों से मैं अपने लिए करता हूँ, पैरों से मैं अपने लिये चलता हूँ। जो कुछ अनुभव है, प्राप्ति है, उपाय है, पुरुषार्थ है, वह सब कुछ मैं अपने लिये करता हूँ और इस शरीर से करता हूँ इसलिए इस शरीर का और मेरा विशेष सम्बन्ध है और मैं उतने तक ही करता हूँ जितना मेरा सामर्थ्य है। इस शरीर तक ही मेरा सामर्थ्य सीमित है, इसलिये मैं इतने में ही क्रिया कर सकता हूँ। मैं दूसरे के शरीर में क्रिया नहीं कर सकता। दूसरे के शरीर में क्रिया करनी पड़ेगी तो मैं बाहर से करूँगा। लेकिन अपने शरीर में क्रिया करनी होगी तो अन्दर से करूँगा। तो इस संसाररूपी शरीर में परमेश्वर क्रिया कर रहा है, बाहर से नहीं अन्दर से कर रहा है। जैसे अन्दर से करने में साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती, मुझे भी नहीं पड़ती और परमेश्वर को भी नहीं पड़ती। इसलिए हमारी और उसकी तुलना करने जो हम बैठ जाते हैं उस तुलना में जो अन्तर है, विशेषता है, भिन्नता है, उसे भी तो ध्यान में रखना होगा। जब मैं अपनी अल्पज्ञता को, अपने अल्प सामर्थ्य को, अपने एकदेशित्व को उसकी तुलना में रखूँगा, तब उससे मेरा क्या भिन्न और क्या समान है, यह मुझे समझ में आ जायेगा। जैसे मुझे सुख-दुःख होता है क्या उसको भी होगा? नहीं होगा, क्योंकि सुख-दुःख अभावों का नाम है और उसके पास अभाव है ही नहीं। आप अगर यह सोचें कि पृथिवी को खोदेंगे तो परमेश्वर में घाव हो जायेगा, ऐसा नहीं होगा। पृथिवी को खोदेंगे तो पृथिवी में गड्ढा हो जाएगा, मरे हुए शरीर में किसी अंग को काटेंगे तो अंग तो कट जायेगा लेकिन आत्मा को कोई कष्ट नहीं होगा। क्योंकि आत्मा का उससे स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं है, वह तो केवल पदार्थ का सम्बन्ध है।

यह इस मन्त्र का एक गहन विवेचन है। हमारी एक मूल समस्या है कि अमैथुनी सृष्टि कैसे हुई तो उसका उत्तर इस मन्त्र में हमें मिलता है, अतः कहा **माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।**

शिविर स्थगित सूचना

वैश्विक महामारी कोरोना (कोविड-१९) के कारण आगामी योग साधना स्वाध्याय शिविर दिनांक ०४ से ११ अक्टूबर २०२० स्थगित किया जा रहा है। आप सब इस महामारी से सुरक्षित व स्वस्थ रहें, इसी प्रार्थना के साथ...

मन्त्री, परोपकारिणी सभा

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सृष्टि-कर्त्ता के कर्त्ता- आस्तिक लोग किसी न किसी रूप में परमात्मा की उपासना में भी विश्वास करते हैं। उपासना की पद्धति भले ही सबकी न्यारी-न्यारी है, परन्तु उपासना करना सबके विचार में पुण्य कर्म है और अत्यावश्यक है। पौराणिक हिन्दुओं की उपासना-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके असंख्य उपास्य हैं और हर मूर्तिपूजक हिन्दू **अपने उपास्य को आप ही बना या बनवा लेता है।**

भगवान् को भोग- इसका सीधा सा अर्थ तो यही निकला कि ये मानते तो यह हैं कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है। वही हमारे शरीर बनाता और हमें जन्म देता है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि **हिन्दू अपने उपास्य को-सृष्टिकर्त्ता को आप बनाते या बनवाते हैं।** वह प्रभु हमारा पिता है और ये मूर्त्तिपूजक उसके पिता हैं। नित्यप्रति उसकी मूर्त्तियाँ घड़ी जाती हैं। कर्मयोग की व्यवस्था वही प्रभु करता है, परन्तु भगवान् को भोग लगाना हर पौराणिक की उपासना की पहली क्रिया या कर्मकाण्ड है।

भगवान् को सब दाता व रक्षक मानते हैं। इन मूर्त्तिपूजकों का व्यवहार इससे सर्वथा विपरीत है। ये अपने पाषाण देवता को धन, पैसे, सोना, चाँदी भी चढ़ाते हैं और भोग भी लगाते हैं। वस्त्र पहनाते हैं। स्नान करवाते हैं। उसकी और उसकी सम्पदा की रक्षा भी करनी पड़ती है। जिन लुटेरे आक्रमणकारियों ने आज तक मन्दिर लूटे हैं, इनका कोई भी भगवान् उनसे अपनी रक्षा न कर सका। किसी को भगवान् ने आज तक तत्काल दण्ड न दिया। **चोरी तो मन्दिरों में आज की सरकारें भी नहीं रोक पाईं।**

भगवान् को सर्वद्रष्टा व सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान माना जाता है। जब भक्त मूर्त्तिपूजा करते हैं तब क्या व देखता व प्रतिक्रिया देता है? आप धूप-दीप दिखायें, घण्टे-घड़ियाल और शंख बजायें उसे कुछ भी पता नहीं चलता। भक्त खड़े होकर भक्ति करें या बैठकर, चाहे एकदम प्रतिमा के आगे लेट जायें उसको कुछ भी पता नहीं चलता।

जब वह मूर्तिभञ्जक लुटेरों को नहीं रोक पाता तो भक्तों का क्या सँवारेगा?

संसार को अंग्रेज़ी में universe कहा जाता है अर्थात् उस एक प्रभु के कण-कण में व्यापक होने से यह विश्व universe कहलाता है। uni शब्द का अर्थ ही एक है। सकल ब्रह्माण्ड में वह एक प्रभु तथा उसका एक ही नियम-विधान अनादिकाल से कार्यरत है। यह universe शब्द अर्थर्ववेद के एक मन्त्र की देन है। आओ! विश्व में वैदिक एकेश्वरवाद के प्रचार-प्रसार में हम सर्वसामर्थ्य से जुट जावें।

डॉ. धर्मवीर जी की मधुर स्मृतियाँ- श्रीमान् डॉ. धर्मवीर जी की पुण्यतिथि (६अक्टूबर) के अवसर पर उनके जीवन के अनेक शिक्षादायक तथा प्रेरक प्रसंग मेरे हृदय को गुदगुदा रहे हैं। डॉ. सुरेन्द्रकुमार जी, डॉ. रामवीर जी जैसे कई माननीय विद्वान् गुरुकुल में उनके संगी-साथी रहे। उन्होंने धर्मवीर जी को निकटता से देखा और वे उनके बारे में अनेक प्रकार के संस्मरण रखते हैं। मैंने धर्मवीर जी का आर्यसमाज में उदय देखा। उनके साथ समाज-सेवा की, धर्मप्रचार के लिये लम्बी-लम्बी यात्रायें कीं। उनके कहने पर, सुझाने पर और उनकी प्रेरणा से बहुत कुछ लिखा। ऋषि-मिशन के लिये उनके साथ संघर्ष भी किया।

उनके गुरुकुल के मित्रों की मैत्री और आत्मीयता से मेरे उनके सम्बन्धों में एक भेद तथा विशेषता भी है। उनका विवाह हुआ तो उनकी जीवनसङ्गिनी के कारण हम दोनों के सम्बन्धों में और घनिष्ठता आ गई। मेरा भारतेन्द्र जी से उनके गृहस्थी बनने से भी पहले से मेल-मिलाप था। महाराष्ट्र में रहते हुए उनके पिताजी से ही नहीं श्री डॉ. धर्मवीर जी के ननिहाल तथा सब सगेवालों से मेरी खूब जान-पहचान थी। उनके कई ऐसे निकटस्थ सगे-सम्बन्धियों को भी मैं जानता था जिन्हें इस गुरुकुलीय स्नातक ने कभी देखा तक नहीं था।

एक प्रसंग याद आ गया। धर्मवीर जी को ऋषि उद्यान के लिए एक उच्चकोटि के विद्वान् की खोज थी। मैंने उन्हें

एक विद्वान् महात्मा का नाम सुझाया। धर्मवीर जी ने मुझे कहा, ''उन्हें यहाँ ले आओ।'' मैंने कहा, ''वह आपके परिवार के हैं, आपके रिश्तेदार थे। आपके कहने का अधिक प्रभाव पड़ेगा।''

यह सुनकर धर्मवीर जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा, ''आपको यह कैसे पता?''

मैंने कहा, ''मैंने महाराष्ट्र में उनका घर-परिवार सब कुछ देखा है।'' धर्मवीर जी यह सुनकर खिलखिलाकर हँसे और बोले, आपका कहना ठीक है। मुझे तो यह पता ही नहीं था कि यह मेरी रिश्तेदारी से हैं। मैंने एक बार लिखा था, ''धर्मवीर जी विरक्त गृहस्थी थे।'' यह उसी का उदाहरण है।

वह धाराप्रवाह संस्कृत बोल सकते थे। प्रकाण्ड विद्वान् थे, परन्तु सभा-मन्त्री बनकर एक बार भी यज्ञ के ब्रह्मा नहीं बने। अन्य-अन्य विद्वानों को ब्रह्मा बनाते रहे। पं. सत्यानन्द जी वेदवागीश सभा की सेवा में थे। उनको एक अधिकारी ने कभी भी ब्रह्मा न बनने दिया। उनकी इच्छा थी कि उन्हें भी यह अवसर मिले। उन्हें ब्रह्मा बनने वाले अधिकारी ने क्या कहा, यह यहाँ मैं क्या लिखूँ। जब स्वामी सर्वानन्द जी सभा के प्रधान बने तो सभा के लिए मुझसे कुछ विचार-विमर्श किया। मेरा सुझाव उनको जँच गया। आपने झट से धर्मवीर जी को लिखा कि यज्ञ के ब्रह्मा पं. सत्यानन्द जी होंगे। तब से धर्मवीर जी ने कई बार उन्हें ब्रह्मा बनवाया।

हम दोनों एक विशाल सम्मेलन में गुंजोटी महाराष्ट्र पहुँचे। जाकर पता चला कि धर्मवीर जी को यज्ञ का ब्रह्मा बनाया जावेगा। धर्मवीर जी ने दृढ़तापूर्वक कहा, ''यज्ञ के ब्रह्मा पं. प्रियदत्त जी तथा पं. राजवीर जी बारी-बारी बनेंगे। मैं वेदोपदेश किया करूँगा।'' उन्होंने पग-पग पर त्याग का, निर्लोभता का परिचय दिया।

प्राचार्य वाब्ले ने उन्हें कॉलेज से निलम्बित करके केस कर दिया। धर्मवीर जी को कॉलेज से निकालने के लिये श्री गजानन्द जी को भी एक कमेटी में ले लिया। इस अटल ईश्वर विश्वासी ने अपने हितैषी और प्रशंसक गजानन्द जी को एक बार भी न कहा कि वहाँ मेरे पक्ष में कुछ कहना। गजानन्द जी ने अपने संस्मरणों में यह लिखा है। स्वामी सर्वानन्द जी सभा के कुछ सदस्यों को लेकर झगड़ा मिटाने के लिये वाब्ले के पास जाने लगे। उनमें मैं भी एक था। धर्मवीर जी ने स्वामी जी से या हममें से किसी को अपने लिये कुछ कहने के लिये एक शब्द न कहा।

ऐसा ईश्वर-विश्वासी मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

साहित्य अकादमी ने श्रद्धाराम फिलौरी की जीवनी छापी। उसकी आड़ में ऋषि पर वार-प्रहार किये। श्री रामचन्द्र जी आर्य ने धर्मवीर जी से कहा, ''जिज्ञासु जी से इसके उत्तर में एक पुस्तक लिखवाकर सभा शीघ्र छापे।'' मुझे यह आदेश दिया गया। मैंने धर्मवीर जी से कहा, ''कुछ लेख तो मैं अभी देने आरम्भ कर दूँगा, परन्तु दिल्ली की सभायें व नेता क्या उत्तर देते हैं पहले यह तो देख लो।''

धर्मवीर जी ने हुँकार भरी, ''हमने ऋषि-ऋण चुकाने के लिए पुस्तक छपवानी है दिल्लीवालों के लिये नहीं।'' ऐसी थी उनकी ऋषि-भक्ति। मैंने लेखनी उठा ली। पुस्तक लिखकर धर्मवीर जी को भेज दी और उसके प्रकाशन के लिये एक कृपालु से दान भी लाकर दे दिया।

हम इकट्ठे यात्रा कर रहे थे। हमारे सामने की सीटों पर बैठे एक पति-पत्नी भोजन के समय मांस आदि मँगवाकर खाने लगे। मैं ऐसा दृश्य देख नहीं सकता। धर्मवीर जी ने युक्ति, तर्क और प्रमाणों से मांसाहार का ऐसा खण्डन किया कि वे सुन-सुनकर दंग रह गये। मैं तो बीच में कभी-कभी ही बोलता था। उन्होंने इन्हें सुनकर मांसाहार छोड़ दिया। वे हमसे पहले किसी स्टेशन पर उतरे। हम दोनों का फोटो लेकर पैर छूकर विदा हुए।

सत्यार्थप्रकाश पर केस किया गया तो एक पेशी पर एक भी सभा, संस्था, व्यक्ति न पहुँचा। धर्मवीर जी, इन्द्रजित् जी तथा मैं भारी वर्षा में वहाँ पहुँच गये। विरोधियों के प्रत्येक वार-प्रहार का उत्तर देने की उनमें जो ललक व निडरता थी, वह सम्भवत: देखने को नहीं मिलेगी। जान जोखिम में डालकर वह धर्मरक्षा के लिये किसी से भी टकराने को तत्पर रहते थे। गुणों के भण्डार धर्मवीर जी के जाने से समाज की भारी क्षति हुई है। उन पर क्या-क्या

लिखा जावे? मेरे मस्तिष्क में उनके सैंकड़ों संस्मरण हैं।

हिन्दू और फलित ज्योतिष- हिन्दू बच्चे जन्म लेते ही फलित ज्योतिष का शिकार हो जाते हैं। प्रत्येक बच्चे की जन्मपत्री बन जाती है। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त वह इस पत्री का बन्दी बन जाता है। जीवन के प्रत्येक मोड़ पर इस पत्री को देख-देखकर वह निर्णय लेता है कि अब क्या करना है। सुख में, दु:ख में, विवाह के अवसर पर तो लड़के तथा लड़की दोनों की ही पत्री का मिलान करके विवाह का निर्णय लिया जाता है। हिन्दू का कर्मकाण्ड बड़ा जटिल है। खरे-खोटे की कोई कसौटी है ही नहीं। इस कर्मकाण्ड में पत्री बहुत कुछ है। ऋषि दयानन्द ने ठीक ही इसे शोकपत्री लिखा है।

शिलान्यास के मुहूर्त पर विवाद- श्रीराम को सरकारी प्रवक्ता, भाजपाई नेता रोम-रोम में राम बताते रहे। अनादि व अनन्त बताते नहीं थकते थे। कभी हम यह भी मण्डलेश्वरों से सुनते रहे कि राम मन्दिर बनवाने में आप ही समर्थ हैं। मन्दिर बनने लगा तो शिलान्यास के मुहूर्त पर ही विवाद होता रहा।

सर्वाधिक विधवायें हिन्दुओं में- अठारहवीं शताब्दी के इतिहास का अवलोकन कीजिये। अंग्रेज़ी शासनकाल में जनगणना में विधवाओं के आंकड़े देखो। सहस्त्रों देवदासियों के नारकीय जीवन की कहानियाँ पढ़कर मनुष्य काँप उठता है। एक-एक दो वर्ष की सहस्त्रों शिशु विधवायें और स्त्रियों में बीस प्रतिशत विधवायें। यह है हिन्दू की ज्योतिष का चमत्कार। मैंने शोलापुर में सुना था कि तिलक चौक में दक्षिण भारत के एक नामी ज्योतिषी रहते थे। उनकी पत्री और विवाह का मुहूर्त पत्थर पर खिंची रेखा मानी जाती थी। उनकी अपनी पुत्री विवाह के शीघ्र पश्चात् विधवा हो गई। उन्होंने ज्योतिष की सब पुस्तकें जला दीं। इन्हीं का विद्वान् पुत्र हमारे साथ कॉलेज में प्राध्यापक था।

अब भी हरिद्वार, प्रयाग आदि में ज्योतिष का पण्डों की कृपा से बोलबाला है। चुनाव के समय सब नेता ज्योतिषियों के पास जाते हैं। सबकी सफलता का मुहूर्त तब निकाल दिया जाता है। श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सफलता की भी घोषणा की गई। वह चुनाव हार गईं। देशवासियों की आँखें फिर भी न खुलीं।

प्राय: सब बड़े दैनिक-पत्रों में राशिफल छपता रहता है। कोरोना से ऐसी दुर्दशा होगी यह किस ज्योतिषी ने बताया था? यह सब कुछ लिखने का हमारा एक ही प्रयोजन है कि सरकार तथा समाज दोनों इस महारोग से देश को बचावें। अन्यथा यह विनाशलीला हिन्दुओं का सर्वनाश कर देगी। अन्धविश्वासों का चस्का व्यक्ति व समाज दोनों को डुबा देता है।

मुद्रण दोष की चूक-क्षमा-याचना- श्रीयुत डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी ने मुझे यह जानकारी दी कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की एक लघु जीवनी में मैंने यह लिखा है कि चौधरी छोटूराम जी दीनानगर में अपने कार्यक्रम से पहले व पीछे दो बार पूज्य स्वामी जी के दर्शनार्थ मठ में गये। मैं तो ऐसा सोच भी नहीं सकता। न कभी कहा व लिखा। मुद्रण-दोष से यह भ्रामक बात प्रूफ पढ़नेवालों की और मेरी पकड़ में भी न आई। मैं इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। इतने लम्बे समय के पश्चात् श्रीमान् कन्हैयालाल जी के कारण यह अशुद्धि पकड़ में आ गई। उनका भी मैं आभार मानता हूँ। अब किसी नई पुस्तक में शीघ्र इस प्रसंग को फिर से एक बार दिया जावेगा।

आर्यसमाज को ऐसे सुयोग्य सपूत चाहिये- श्री विनोद जी एक उच्च शिक्षित, स्वाध्यायशील, परिश्रमी केरलीय युवक विदेश में कार्यरत हैं। वह निरन्तर सूक्ष्म दृष्टि से आर्यसामाजिक साहित्य पर मनन-चिन्तन करके सप्ताह में एक बार मुझसे चलभाष पर विचार-विमर्श करके जो पूछना होता है पूछते रहते हैं। आपके प्रश्न व शंकायें बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। ऐसे बीस ऋषिभक्त युवक कार्यक्षेत्र में उतर आयें तो आर्यसमाज की धूम मच जावे। वह परिस्थितियाँ ठीक होने पर जब मिलने आयेंगे तब आगे का कार्यक्रम श्री मदनलाल जी और श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त हम सब मिलकर सोच-विचार कर बनायेंगे। हर्ष तथा आनन्द का विषय यह है कि उनकी पत्नी व बच्चे भी आर्य विचार के हैं। वे सब यहाँ आयेंगे। आओ! हम सब समाज को कुछ तो दें।

आर्यसमाज के वरिष्ठ विद्वानों की सेवा में विनती- देश-विदेश के हमारे निष्ठावान् आर्यप्रेमी प्राय: यह पूछते रहते हैं अब क्या लिख रहे हो? मैं उनकी भावना व

धर्मानुराग की प्रशंसा किन शब्दों में करूँ! ऐसे बन्धुओं के इस प्रश्न या पूछताछ से मुझे एक नया और ठोस विचार सूझा है कि मैं अपने वरिष्ठ विद्वानों की सेवा में एक विनती करूँ कि जिनकी आयु अब साठ-पैंसठ वर्ष हो चुकी है वे यह नोट कर लें- **जीवन पल-पल बीता जावे।** हमारे पास अब गिने-चुने गम्भीर विद्वान् हैं। अन्धकार तथा अन्धविश्वासों की यत्र-तत्र बहुत छावनियाँ हैं। हमारे सब विद्वान् वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर चार-चार, पाँच-पाँच विषय चुनकर पूरी शक्ति लगाकर जो कुछ ठोस लिख सकते हैं लिख दें। मैं किसी को विषय नहीं सुझा सकता। वे अपनी रुचि का विषय स्वयं चुनें। किसी से विचार-विमर्श करना हो तो कर लें। डॉ. वेदपाल जी, डॉ. सुरेन्द्र जी, डॉ. ज्वलन्त जी, डॉ. सुमित्रा जी बैंगलूर, आचार्य राजेश आर्य कालीकट आदि सब महानुभाव मेरी विनती पर ध्यान देंगे। ऐसी मुझे आशा है।

कुछ वर्ष पूर्व आर्यसमाज के विरुद्ध लिखी गई मुंशी इन्द्रमणि जी की एक पुस्तक मैंने डॉ. वेदपाल जी को उत्तर देने के लिए दी थी। वह न तो उत्तर लिख पाये और न ही उस पर कोई लेख दिया तथा न वह दुर्लभ पुस्तक लौटाई। लौटाते तो मैं ही कुछ लिख देता। हम सब ऐसे भूल पर भूल करके समाज का हित नहीं करते। यह चिन्ता का विषय है। समय भाग रहा है।

मैंने निर्णय ले लिया है- मैंने अब क्या-क्या करना है? और क्या-क्या लिखना है? क्या-क्या प्राथमिकतायें हैं? यह सब सोच लिया है। मेरे पास समय अब कितना बचा है, यह ईश्वरेच्छा पर निर्भर करता है। यह मैं क्या जानूँ, तथापि एक-एक वर्ष का कार्य बनाकर अब कार्य कर रहा हूँ। मेरे प्रेमी जो सुझाते हैं वे दो-तीन कार्य एक ही समय किये जाता हूँ। वही प्रकाशन की व्यवस्था और प्रसार करते जायेंगे। एक कार्य निपटता है तो आगे के एक-दो कार्य पकड़ लेता हूँ। मेरे नब्बे वर्ष पूरे होने तक पाँच-छः छोटी-बड़ी पुस्तकें पूरी कर पाऊँगा, ऐसी आशा लेकर चल रहा हूँ।

पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की अन्तिम वेला का चलन और उनकी सेवायें मेरा आदर्श हैं। कल छः सितम्बर को उपाध्याय जी का जन्मदिवस है। श्री जितेन्द्रप्रसाद जी गुप्त की प्रेरणा से उनके लिये पूज्य पं. चमूपति जी के जीवन तथा साहित्य (विशेष रूप से उनके काव्य) पर एक नये ग्रन्थ का सृजन आरम्भ कर दिया जावेगा। पहले भी उन पर लिखता रहा। अब पं चमूपति जी के हृदय के 'उद्गार और अंगार' नाम की एक पठनीय पुस्तक का लिखना आरम्भ हो जावेगा।

पं. देवप्रकाश जी की चर्चा बहुत लोग करते हैं। उनके जीवन-चरित्र लिखने को प्राथमिकता देने का अनुरोध किया जाता है। उनका अभिनन्दन ग्रन्थ तो अवश्य छपा था। जीवनी उपलब्ध न होने से उनके विषय में कुछ निराधार छप जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इतिहास-प्रदूषणवालों को इससे एक अवसर मिल जाता है। पण्डितजी ने अपने जीवन-परिचय के लिये (आत्मकथा समझिये) संक्षेप से कुछ लिखा था। उसको आधार बनाकर- उसे भी यत्र-तत्र उद्धृत करके मैं कल छः सितम्बर को पण्डित जी की जीवनी लिखने का कार्य भी आरम्भ कर दूँगा। मेरे पास सामग्री की कोई कमी नहीं। मेरा पण्डित जी से लम्बे समय तक सम्पर्क रहा। मैं उनके अन्तिम दिनों तक उनके दर्शनार्थ आर्यसमाज लक्ष्मणसर जाता रहा। उनके साहित्य पर भी मेरी कुछ पकड़ रही है। उनकी आत्मकथा की पाण्डुलिपि मेरे पास सुरक्षित है।

पं. लेखराम जी की परम्परा के इस गम्भीर विद्वान्, लेखक, गवेषक और तपस्वी पुण्यात्मा का यह जीवन-चरित्र एक चुभते अभाव की पूर्ति करेगा। उनकी अपने विषय की एक बेजोड़ पुस्तक **'दाफे-उल-आहाम'** (पं. लेखराम के बलिदान पर) को जाननेवाला और उस पर अधिकार से लिखनेवाला अब आर्यसमाज में एक ही व्यक्ति बचा है और वह है राजेन्द्र 'जिज्ञासु'। अन्य सब विद्वान् तो चल बसे। आर्य बन्धुओं को निराश नहीं करूँगा। यह पुस्तक कितनी बड़ी हो? इसका निर्णय इसे लिखनेवालों से बात करके आठ-दस दिन में कर लिया जावेगा। उपाध्याय जी ने अन्तिम काल में जो अद्भुत साहित्य दिया मैं भी कुछ वैसा करना चाहता हूँ और सब कुछ छोड़ कर क्या कुछ कर पाता हूँ यह देखिये। ऋषिभक्तों के आशीर्वाद से-प्रभु कृपा से एक इतिहास अवश्य बनेगा।

ऐतिहासिक कलम से....

पुराणों की अवैदिकता

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

श्री मुनीश्वरदेव सिद्धान्त-शिरोमणि

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भारत के पतन में सर्वाधिक योगदान दिया पुराणों ने। आर्य-संस्कृति को भ्रान्त रूप में प्रसारित किया पुराणों ने। पुराण और वेद परस्पर अमृत-विष की भाँति विरोधी हैं। वेद की प्रतिष्ठा और प्रसार के लिये आवश्यकता है कि पुराणों के विष से हम सावधान हों। -सम्पादक

नवयुग प्रवर्त्तक, वेदोद्धारक, समाज-सुधारक महामहिम महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने यह अनुभव किया था कि 'अष्टादश पुराण' कपोल-कल्पित एवं वेदविरुद्ध होने के कारण विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्य हैं। इसके अतिरिक्त जो तथाकथित विद्वान् '**अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः**' के अनुसार अष्टादश पुराणों का कर्त्ता महर्षि व्यास को मानते थे अथवा वर्तमान में मानते है-उन्हें स्पष्ट शब्दों में चेतावनीपूर्वक कहा कि जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते, तो उनमें इतने गपोड़े न होते, क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोल-कल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं। किन्तु, यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान्, पामरों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं, किन्तु (ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति) यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पाँच नाम हैं।...इसलिये सबसे प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में यह सब घटना हो सकती है। इन नवीन कपोल-कल्पित श्रीमद्भागवत, शिवपुराणादि मिथ्या व दूषित ग्रन्थों में नहीं घट सकती।

(सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास)

पुनः अत्यन्त खिन्न होकर आचार्य लिखते हैं, ''वाह रे वाह! भागवत के बनानेवाले लालबुझक्कड़ क्या कहना तुमको ! ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई, निपट अन्धा ही बन गया । ...धिक्कार है पोप और पोपरचित इस महाअसम्भव लीला को जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रखा है, भला इन महाझूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर-भीतर की फूटी आँखोंवाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई? इन भागवतादि पुराणों के बनानेवाले क्यों नहीं गर्भ में ही नष्ट हो गये। वा जन्मते समय मर क्यों न गए!! क्योंकि इन पोपों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।''

फिर आगे इसी ग्रन्थरत्न में श्रीकृष्ण जी पर पुराणों द्वारा लगाये गये मिथ्याक्षेपों से असहमति प्रकट करते हुए ऋषिवर लिखते हैं:-

''देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम

है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रास-मण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। ...जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती?''

इत्यादि उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि अष्टादश पुराण विषसम्पृक्तान्नवत् सर्वथा त्याज्य हैं, इनका प्रचार व्यक्ति, समाज, जाति, देश वा राष्ट्र के हित में अहितकर है। अब थोड़ा सा आगे पुराण शब्द पर भी विवेचन करते हैं। पौराणिक विद्वानों का कहना है कि वेदों में भी पुराणों का उल्लेख है, अतः पुराण भी प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं और धर्माधर्म के प्रसंग में प्रामाणिक हैं, हमारी सम्मति में निराधार है। वेदों में 'पुराण' शब्द अवश्य है, परन्तु यह 'भागवत' आदि कपोल-कल्पित पुराण-ग्रन्थों का प्रतिपादक नहीं है। यथा-

१- अयं पन्था अनुवृत्तिः पुराणः। ऋ. २।१८०।१।।

इस मन्त्र में 'पुराण' पुरातन अर्थ का विज्ञापक है और 'पन्था' का विशेषण है। 'भागवत' आदि पुराणों का बोधक नहीं है।

२- 'पुनः पुनर्जायमाना पुराणी।' ऋ. १।९२।१०।।

प्रस्तुत मन्त्र में 'पुराणी' शब्द उषा का विशेषण है और 'सनातनी' अर्थ का प्रतिपादक है। किसी कल्पित पुराण ग्रन्थ का ज्ञापक नहीं है।

३- अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्रस्थ पुराणा ये च नूतनाः। यजु. १२।४५

इस मन्त्र में भी 'पुराणाः' शब्द पितर का विशेषण कहा है, किन्हीं 'भागवत' आदि कपोल-कल्पित ग्रन्थों के लिये किसी भाष्यकार ने विनियुक्त नहीं किया। यहाँ इसका अर्थ पूर्वज-वृद्ध ही है।

४- ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। अथर्व. ११।७।२४।

इस मन्त्र में 'पुराणम्' शब्द 'देहली दीप' न्यायानुसार प्रत्येक वेद की पुरातनता-सनातनता को दिखाता है। किसी 'भागवत' आदि पुराण-ग्रन्थ के लिए नहीं आया, यह निर्विवाद सत्य है। इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि वेदों में पठित 'पुराण' शब्द विशेषण के रूप में होता है, परन्तु किसी ग्रन्थ विशेष की संज्ञासूचक नहीं है।

इसके अतिरिक्त गीता अ. २ श्लोक २० में

अजो नित्यः शाश्वतो ऽयं पुराणः।

वचन मिलता है। यहाँ पर भी 'पुराण' शब्द जीवात्मा की सनातनता के लिए प्रयुक्त हुआ है, किसी कल्पित ग्रन्थ के लिए नहीं आया।

अतः सुतराँ सिद्ध हुआ है कि पुराण शब्द से वैदिक ग्रन्थों में अष्टादश पुराणों का कहीं भी उल्लेख व प्रतिपादन नहीं। अतएव दयानन्द जी महाराज की यह धारणा नितान्त निर्भ्रान्त है कि ये १८ पुराण वेद-विरुद्ध, कपोल-कल्पित और विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्य हैं। अब आगे पुराणों में अवैदिक विचारों का सिंहावलोकन जरा कर लीजियेगा।

वेद-ईश्वर का स्वरूप बतलाता है-

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भुर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

यजु. अ. ४०।८।।

इसमें ईश्वर को सर्वव्यापक, अशरीरी, नस-नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध, पवित्र, अनादि और वेद-प्रकाशक माना है।

पुराणः-ईश्वर का स्वरूप यह प्रस्तुत करता है-

गजेन्द्रवदनं देवं श्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम्।
परशुलगुडं वामे दक्षिणे दण्डमुत्पलम्।
मूषकस्थं महाकायं शंखकुन्देन्दुसमप्रभम्।
युक्तं बुद्धि कुबुद्धिभ्यां एकदन्तं भयावहम्।।

भविष्य. पुराण

इसमें कैसा वेद-विरुद्ध भयानक ईश्वर का स्वरूप दिखाया गया है। पाठक देख लें। भक्तों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

वेद-मुक्ति का मार्ग दिखाता है-

१- तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था

विद्यतेऽयनाय।

इसमें केवल 'ब्रह्मज्ञान' को ही मुक्ति का साधन बतलाया है।

२- विद्यया विन्दतेऽमृतम्। यजु. ४०। १४

अर्थात् अमृत-मोक्ष की प्राप्ति विद्या-यथार्थ ज्ञान से मानी है।

पुराण-मुक्ति के साधन लिखता है-

१- भस्मधारी विशेषेण स्त्रीगोहत्यादिपातकैः।

वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः। शिव. पुराण

२- गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। ब्रह्मवैवर्त पुराण

३- तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्।

स मुच्यते सर्वपापाद् विष्णुलोकं स गच्छति। ब्रह्मवैवर्त. १

४- शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।

कोटि जन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः। ब्रह्मवैवर्त. १

इत्यादि अनेक श्लोकों में गंगा-स्नान व नामोच्चारण, तुलसीदल का जल, शिव नामोच्चारण, भस्म-धारण, त्रिपुण्ड्रधारण और विष्णुचरणामृत आदि अनेक मिथ्या, कपोल-कल्पित साधनाभासों को जो वस्तुतः नरक के साधन हैं, मुक्ति के साधन बतलाये हैं, जो कि सर्वथा वेद-विरुद्ध होने से अमान्य हैं।

वेद-गौ आदि उपकारक पशुओं की रक्षा का विधायक है।

१- गां मां हिंसीः। यजु. १३। ४३

२- अन्तकाय गोघातम्। यजुर्वेद

३- मा हिंसीः द्विपादं चतुष्पादम्। यजुर्वेद

इत्यादि अनेक मन्त्रों में गो आदि महोपकारक पशुओं की हिंसा का सर्वथा निषेध है।

पुराण-गोवध की आज्ञा देता है-

१- पंचकोटी गवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च।

एतेषां च नदी राशिर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने।

२- पंचलक्षगवाँ मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः।

ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः।।

३- गवां द्वादशलक्षाणां दक्षैः नित्यमुदान्वितः।

सुपक्वानि च मांसानि ब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति।

४- गवां लक्षछेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम्।

दशलक्षं छागलानां भेटाना च्चतुर्गुणम्।।

एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय।।

इत्यादि ब्रह्मवैवर्त प्रभृति पुराणों में निरीह व निरपराध उपकारक पशुओं का वध, मांस-लोलुप, स्वार्थी, वाममार्गी विद्वानों द्वारा यत्र-तत्र-सर्वत्र भरा पड़ा है जोकि वेद-विपरीत होने के कारण सर्वथा अमान्य है।

वेद-सगोत्र व सपिण्ड में विवाह-सम्बन्ध का निषेधक है-

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि। यजु. ११।७२

विवाह सर्वदा दूर देश के परिवारों में होना उचित है।

पुराण-इसकी लीला देखिये कैसी विचित्र है-

१- या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद् यं पुरुषं शुभम्।

कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत्।।

२- मातृजां पितृजां चैव यां चैवोद्वहेत् स्त्रियम्।

कुलैकविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते।।

३- स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णु देवः स्वमातरम्।

भगिनीं भगवांच्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्।

४- विवस्वान् भ्रातृजां सज्ञां श्रेष्ठतामगात्।।

इत्यादि अनेक श्लोक भविष्यपुराणादि में वर्णित हैं, जिनमें स्व-पुत्री, बहिन, भतीजी, माता, मामी आदि निकट के रिश्तों में विवाह-सम्बन्धों का निषिद्ध एवं वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध विधान किया गया है। जो कि सर्वथा अमान्य एवं अग्राह्य है।

इसके अतिरिक्त इन पुराणों में महापुरुष राम, कृष्ण आदि की भरपेट निन्दा की है। मांसाहार, मद्यपान, व्यभिचार, द्यूतक्रीड़ा, असम्बद्ध प्रलाप, परस्पर विरोध, असम्भव गपोड़े आदि अनेक दोष पाये जाते हैं। जिन्हें देखकर विदेशी व अन्य मतावलम्बी लोग उपहास उड़ाते हैं। अतः पुराणों की अवैदिक कुशिक्षा का परित्याग कर विशुद्ध वैदिक शिक्षा को अपनाकर सर्वत्र उसका ही प्रचार होना चाहिये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का यह भी एक महान् उपकार है कि उन्होंने आज से पचासों वर्ष पूर्व अपने अमर

ग्रन्थरत्न 'सत्यार्थप्रकाश' द्वारा इन कपोल-कल्पित स्वार्थी वाममार्गियों की रचनाओं की निष्पक्षभाव से समीक्षा करके सत्य-असत्य का निर्णय करते हुए सर्वसाधारण जनता का सुपथ प्रदर्शन किया है। आज आवश्यकता है कि हम पुराणों के विष से देश को बचाएँ।

पोप-लीला

श्रीमती पवित्रादेवी विद्याविभूषिता

पाखण्डी, ढोंगी व्यक्तियों का बोध 'पोप' शब्द से होता है। भारत के हर ग्राम-मोहल्ले में 'पोप' आप आसानी से पाएँगे। धर्म के नाम पर धोखा-छल और प्रत्येक पाप इनका अस्त्र है। लेख में इन्हीं धार्मिक-अधर्मियों की लीला पढ़िये। -सम्पादक

'पोप' शब्द सम्भवत: लैटिन भाषा का है, जो बाद में ग्रीक तथा पुरानी अंग्रेजी में भी प्रयुक्त होने लगा। आधुनिक अंग्रेजी में प्रयुक्त होने वाले 'पापा' और 'पोप' शब्द का मूल एक ही है। जिस तरह 'पापा' का अर्थ पिता उसी तरह पोप का अर्थ भी पिता है। पहले कभी धार्मिक गुरु या आध्यात्मिक पिता के नाते रोमन कैथोलिक चर्च के सबसे बड़े धर्माध्यक्ष को पोप कहा जाता था। जिस तरह भारत में शंकराचार्य की गद्दी चलती है उसी प्रकार रोम में पोप की भी गद्दी चलती है। पोप सारे संसार के रोमन कैथोलिक ईसाइयों का सबसे बड़ा धर्म-गुरु माना जाता है। रोम के इस पोप की वैटिकन सिटी नाम की अपनी एक अलग नगरी है जिसमें पोप का अपना किला, अपनी फौज और अपनी ही नागरिक-व्यवस्था चलती है और उसमें संसार के किसी और राज्य की किसी भी सरकार का कोई दखल नहीं है। नववर्ष के दिन या बड़े दिन (क्रिसमस) पर पोप संसार भर के ईसाइयों के नाम सन्देश देते हैं। आज भी धार्मिक जगत् में जितनी मान्यता और सत्ता इस पोप की है, उतनी शायद संसार में किसी भी सम्प्रदाय के धार्मिक गुरु की नहीं है।

पुराने समय में रोम के पोप अपने चेलों से कहा करते थे कि तुम यदि हमारे सामने अपने पाप स्वीकार (confession) कर लोगे तो हम तुम्हारे पाप क्षमा करवा देंगे। साथ ही वे यह भी कहा करते थे कि हमारी सेवा या आज्ञा के बिना कोई स्वर्ग में नहीं जा सकता। यदि तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो जो-जो सुख-सुविधाएँ तुम स्वर्ग में चाहते हो उन सबका पैसा हिसाब से यहाँ हमारे पास जमा करवा दो तो तुम्हें अभीष्ट सामग्री स्वर्ग में मिल जायेगी। पोप के वचन पर विश्वास करके उनके अन्धभक्त उनको यथेष्ट रुपया देते और पोप ईसा और मरियम की मूर्ति के सामने खड़े होकर इस प्रकार की हुंडी लिख कर देते थे- ''हे खुदाबन्द यीशु मसीह! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर एक लाख रुपया (या जितना वह दे) जमा करवाया है, जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में २५ सहस्र रुपये में बाग-बगीचा और मकान, २५ सहस्र में सवारी और नौकर-चाकर, २५ सहस्र में खाना-पीना और कपड़े-लत्तों का भण्डार तथा २५ सहस्र रुपये इसके इष्ट-मित्रों और भाई-बन्धु आदि की दावत के लिये दिला देना।'' फिर उस हुंडी के नीचे पोप अपने हस्ताक्षर करता और भक्त के हाथ में हुंडी देकर कहता कि जब तू मरे तब हुंडी को कब्र में अपने सिरहाने रख देने के लिये अपने कुटुम्बीजनों को कह छोड़ना। फिर तुझे स्वर्ग में ले जाने के लिए फरिश्ते आयेंगे और वे हुंडी को देखकर उसमें लिखे के अनुसार सब चीजें तुझे दिला देंगे।

जब तक यूरोप में अविद्या और अन्धविश्वास रहा तब तक वहाँ यह पोप-लीला खूब चलती रही। अब यद्यपि वैज्ञानिक युग के प्रवेश और विद्या के प्रचार के साथ इस प्रकार की पोप-लीला में बहुत कुछ कमी आ गई है, किन्तु वह बिल्कुल निर्मूल हो गई हो यह नहीं कहा जा सकता। ईसाइयों में जहाँ अन्य अन्धविश्वासों की कमी नहीं है, वहाँ रोम के पोप के प्रति अन्धभक्ति में भी कमी नहीं है।

जैसे रोम के पोप अपने आप को धर्म और स्वर्ग के ठेकेदार समझते थे, उसी प्रकार भारत में भी जिन लोगों ने अपने आपको धर्म का और स्वर्ग का ठेकेदार कहकर जनता को अन्धविश्वास के गर्त में ढकेलने में और धर्म के नाम से स्वार्थ-सिद्धि करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, उन्हीं को ऋषि ने 'पोप' संज्ञा दी है। ऋषि दयानन्द से पहिले इस प्रकार के कपटी, स्वार्थी, अविद्वान्, धर्म के ठेकेदार, पुराणपन्थी ब्राह्मणों को किसी और ने यह संज्ञा दी हो, यह

ध्यान नहीं पड़ता। ऐसे व्यक्तियों के लिये 'पोप' शब्द कैसा सटीक ठीक बैठता है यह रसज्ञ लोग ही समझ सकते हैं।

ब्राह्मण-देवता-गुरु

जब अन्य सब वर्णों को व्यवस्था में रखने वाले ब्राह्मण ही विद्याहीन हो गये तब उनके यजमान स्वरूप अन्य लोग-जिसमें राजा और प्रजा दोनों सम्मिलित थे-विद्याहीन क्यों न होते। नाना कपोल-कल्पनाओं, पौराणिक गपोड़ों और ग्रह-नक्षत्रों के आतकों से लोगों को भयभीत करके ब्राह्मणों ने सबको यह पाठ पढ़ाया-

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्राः ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मण दैवतम्।।

अर्थात् देवताओं के आधीन सब जगत् है, मन्त्रों के आधीन सब देवता हैं और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं, इसलिये ब्राह्मण ही देवता है। इस प्रकार मन्त्र के बल से देवता को बुलाकर और प्रसन्न करके सिद्ध करने का दावा करनेवाले ब्राह्मणों ने जब अपने आपको ही 'पृथ्वी का देवता' बताना प्रारम्भ किया तब उन्होंने परमात्मा के स्थान पर अपनी ही पूजा करने के लिये यजमानों को प्रेरित किया। गुरु-कृपा के महत्त्व पर बल देते हुए उन्होंने गुरु-सेवा और गुरु माहात्म्य के सम्बन्ध में 'गुरु गीता' जैसे अतिशयोक्तिपूर्ण ग्रन्थ लिखे और नाना पुराण आदि वेद-विरुद्ध ग्रन्थों का प्रणयन कर उन्हें व्यास आदि प्राचीन महर्षियों द्वारा प्राचीन ग्रन्थों के रूप में प्रचारित किया। वैदिक वाङ्मय में इन स्वार्थी लोगों ने अपनी ओर से मूर्ति-पूजा, खाद्य तथा मद्य- मांसादि अनाचार के समर्थक प्रक्षिप्त अंश भी मिलाने में कसर नहीं छोड़ी। धीरे-धीरे गुरु का स्थान इतना बढ़ गया कि उसे परमात्मा का समकक्ष या परमात्मा से भी बड़ा दिखाने का प्रयत्न किया गया। **गुरुदेवः परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः** आदि श्लोक उसी मनोवृत्ति के द्योतक हैं। गुरु के पग धोकर पीना, अपना तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण करना, स्त्री, कन्या आदि को गुरु की चरण-सेवा के लिये नियुक्त करना और गुरु की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना ही परम धर्म बन गया। यजमानों को सिखाया गया कि गुरु चाहे कैसा ही पाप करे उसके ऊपर कभी अश्रद्धा नहीं करनी चाहिये और बड़े से बड़ा कुकर्म करने पर भी गुरु को दण्ड देने की बात राजा तक को भी कभी मन में नहीं लानी चाहिये। यदि गुरु लोभी हो तो उसे वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के समान, मोही हो तो राम के तुल्य और यदि कामी हो तो कृष्ण के समान जानना चाहिए। कहा गया कि गुरु के दर्शन के लिये जाने में एक-एक कदम पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है।

मूर्त्तिपूजा - बौद्धों और जैनियों की देखा-देखी इन पोप-कुल-प्रवर्तक ब्राह्मणों ने भी अपने अलग मन्दिर और मूर्तियाँ बनानी प्रारम्भ कीं। यदि बौद्धों और जैनियों की मूर्तियाँ ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्यों के समान बनाई गईं तो इन पौराणिकों ने यथेष्ट शृंगारित स्त्री के सहित रंग, राग, भोग-विषयासक्ति वाली मूर्तियाँ बनाईं। बौद्धों और जैनियों के मंदिरों में कोलाहल का अभाव रहता था तो इन सम्प्रदायी पोपों ने शंख, घण्टे, घड़ियाल आदि बजाकर जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ठीक वही हथकण्डे अपनाये जो एक दुकानदार किसी दूसरे दुकानदार के ग्राहकों को अपनी ओर मोड़ने के लिए अपनाता है।

कभी-कभी ये ऐसी विचित्र माया रचते कि पाषाण मूर्त्तियाँ बनाकर किसी पहाड़ या जंगल आदि में गुप्त स्थान पर रख आते या भूमि में गाड़ देते और फिर अपने चेलों में प्रसिद्ध करते कि मुझे रात को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम या लक्ष्मी, नारायण और भैरव, हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक ठिकाने पर हैं, यदि हमको वहाँ से ला, मन्दिर में स्थापना करो और तुम्हीं हमारे पुजारी होओ तो हम मनोवाञ्छित फल देवें। जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे लोग इस पोपलीला को सच मानकर अमुक पहाड़ वा जंगल में उनके साथ वहाँ पहुँच कर देखते कि सचमुच मूर्त्ति विद्यमान है, तब पोप के पाँवों पर गिर कर कहते कि आप पर इस देवता की बड़ी कृपा है। अब आप इसे ले चलिये, हम मन्दिर बनवा देंगे। उसमें देवता की स्थापना करके आप ही इसकी पूजा करना और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन-पर्सन से मनोवाञ्छित फल पावेंगे। जब इस प्रकार एक की कपटलीला चल निकली तब अन्यों ने भी धीरे-धीरे अपनी

जीविका के लिये लोगों को बरगलाकर मूर्त्तियों की स्थापना की।

तीर्थ, ग्रह और व्रत - धीरे-धीरे इन पोपों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये ही नाना तीर्थों, ग्रहों और व्रतों का इतना प्रपञ्च फैलाया कि आज का समस्त हिन्दू-समाज अन्य सब कर्त्तव्य कर्मों को भूलकर केवल उन्हीं को मोक्ष का साधन समझ बैठा है। शाक्तों, शैवों, वैष्णवों आदि नाना सम्प्रदायवादियों के अनेकशः तीर्थ भारत भर में फैले हुए हैं और उनके बिना देश के आधुनिक इतिहास या भूगोल की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयागराज, कुरुक्षेत्र, जगन्नाथपुरी, द्वारिकापुरी, रामेश्वरम आदि तीर्थ स्थान इन पोपों की ही पेटपूजा के प्राचीन साधन हैं। तीर्थों का अलग-अलग माहात्म्य वर्णित कर विशिष्ट मन्दिरों को विशिष्ट मूर्त्तियों के विशिष्ट चमत्कारों का बखान किया गया है। जैसे हर एक पुराण अपने-अपने इष्ट देवता को सृष्टि का निर्माता और सब देवताओं का आराध्य बताता है वैसे ही इन तीर्थध्वांक्षों ने अपने-अपने तीर्थ और अपनी-अपनी मूर्त्ति को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ाकर बताया है।

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्।।
प्रातः काले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्न सायाह्ने सप्त जन्मनाम्।।

ये सब श्लोक भी पोपों की ही रचना है। सैकड़ों कोस दूर से भी गंगा-गंगा कहने पर पाप नष्ट हो जाते हैं और भक्त विष्णुलोक में पहुँच जाता है। 'हरि' इन दो अक्षरों का उच्चारण मात्र सब पापों को हर लेता है। (ऐसे ही राम, कृष्ण, शिव आदि नामों का महत्त्व है) जो मनुष्य प्रातः काल में शिव या उसकी मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है, मध्याह्न में दर्शन करे तो जन्म भर का पाप नष्ट हो जाता है और सायंकाल में दर्शन करे तो सात जन्मों का पाप छूट जाता है। नाम स्मरण करने से पाप छूट जाने की यही भावना है जिसके कारण दिन प्रतिदिन धूआँधार अखण्ड नाम संकीर्तन होता है, तीर्थ-यात्रा के लिए स्पेशल गाड़ियाँ चलती हैं और तीर्थों में महान् जन-सम्मर्द एकत्रित होता है, परन्तु क्या कोई कह सकता है कि इस सब क्रियाकलाप के बावजूद लोगों की पाप-वृत्ति में कुछ अन्तर आया है? प्रत्युत प्रत्यक्ष तो यह है कि नाम-स्मरण या तीर्थ-स्नान की भावना ने ही पाप की वृद्धि में प्रमुख योग दिया है, क्योंकि मूढ़जन यह विश्वास करते हैं कि कितना ही पाप करो, कोई हानि नहीं। नाम स्मरण किया और तीर्थ में डुबकी लगाई कि तुरन्त सब पाप विलीन हो गये। **तीर्थयात्रा का प्रयोजन क्या यही है कि साल भर पाप करते रहे और वर्ष समाप्त होने पर एक बार तीर्थ जाकर नये वर्ष में फिर से पाप करने का नया लाइसेंस ले आये?**

ठग-विद्या - कोई-कोई धूर्त्त ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग भी धोखा खा जाते हैं। पाँच-सात लोग मिलकर किसी दूरस्थ प्रदेश में जाते हैं। शरीर से, डीलडौल में और रूपरंग में जो अच्छा हो उसे सिद्ध बना लेते हैं और जिस किसी नगर या ग्राम में धनियों की संख्या अधिक हो उसके समीप के जंगल में उस सिद्ध को बिठा देते हैं और स्वयं नगर में जाकर अनजान बनकर पूछते हैं- ''तुमने कोई ऐसा-ऐसा महात्मा यहाँ कहीं देखा है?'' लोग पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है, तब ये साधक कहते हैं। ''बड़ा सिद्ध पुरुष है, मन की बातें बतला देता है, जो मुख से कहता है वह हो जाता है। हम तो उसी के दर्शन के लिए घरबार छोड़कर मारे-मारे फिरते हैं। हमने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर ही आये हैं।'' धनी व्यक्ति कहता है- ''ऐसी बात है? जब वे महात्मा तुम्हें मिलें तो हमें भी बताना, हम भी दर्शन करके अपने मन की बात पूछेंगे।'' फिर ये बनावटी साधक अनेक सम्भ्रान्त गृहस्थियों और धनी नागरिकों को इसी प्रकार पटाकर तीन-चार दिन बाद जाकर उनसे कहते हैं कि वे महात्मा मिल गये। तुम्हें दर्शन करना हो तो चलो। वे जब चलने को तैयार हो जाते हैं तब ये साधक उनसे कहते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो, हमें बताओ। फिर सिद्ध और साधकों ने मिलकर जैसे संकेत निश्चित किये हुए होते हैं उनके अनुसार धन की इच्छावाले को दाहिनी ओर, पुत्र की इच्छा वाले को सामने, रोग-निवारण की इच्छावाले को पीछे से ले जाकर बीच में बिठाते। तभी

सिद्ध अपनी सिद्धाई बताने के लिये उच्च स्वर से बोलता है- क्या यहाँ पुत्र रखे हैं जो पुत्र की इच्छा से आया है? इसी प्रकार धन की इच्छावाले से कहता है- क्या यहाँ थैलियाँ रखी हैं जो धन की इच्छा से आया है? फकीरों के पास धन कहाँ धरा है? रोगवाले से कहता है- 'क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग छुड़ाने आया है? किसी डाक्टर, वैद्य के पास जा। इस प्रकार जब सिद्धों की सिद्धाई चमक उठती है तब पोपों के चेले इन पाखण्डियों के पौ-बारह और यदि अकस्मात् सिद्ध के कहने से नहीं, किन्तु प्रकृति के नियमानुसार ही किसी धनाढ्य के पुत्र हो जाये, या उसे धन मिल जाये या रोग-निवारण हो जाये तो फिर क्या कहने। फिर तो सिद्ध के पास मिठाई, रुपया, पैसा, कपड़ा और सीधा-सामग्री का अम्बार लग जाता है। फिर जब तक सिद्ध को मान्यता रहती है तब तक ये ठग अपनी इस पोपलीला की बदौलत नागरिकों को खूब लूटते हैं।

स्त्रियों में अधिक

यह पोपलीला पुरुषों में जितनी चलती है उससे कहीं अधिक स्त्रियों में चलती है। स्त्रियाँ स्वभावत: भावना-प्रधान होती हैं और धर्म-कर्म के प्रति उनकी आस्था भी विशेष मात्रा में होती है। इसके साथ ही स्त्रियों में अशिक्षा भी अधिक होने के कारण कभी एकादशी, कमी पूर्णमासी, कभी दुर्गानवमी, कभी नागपञ्चमी, कभी करवाचौथ आदि के नाम पर पोप जी उन्हें ठगते रहते हैं। श्राद्ध-तर्पण और पिण्ड-दान मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुँचते किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोपों के उदर और हाथ में जरूर पहुँचते हैं। वैतरणी के नाम पर जो गोदान लिया जाता है वह भी पोप या कसाई के घर ही पहुँचता है। गाय वैतरणी नहीं पहुँचाती जैसा कि जाट और पोप जी के दृष्टान्त से स्पष्ट है।

पोपलीला के मूल में जितना स्थान अविद्या का है, उससे कहीं अधिक स्वार्थ का स्थान है। जब तक अज्ञान और स्वार्थ नष्ट नहीं होंगे, पोपलीला भी नष्ट नहीं होगी। पोपलीला को नष्ट करने के लिये अज्ञान और स्वार्थ इन दोनों का निराकरण आवश्यक है। प्रभो! वह दिन कब आयेगा जब हमारा देश अज्ञान और स्वार्थ से विमुक्त होगा, पोपलीला के पाखण्ड से बचेगा और वैदिकधर्म के शुद्ध स्वरूप का अनुयायी होगा!

आर्यजगत् के समाचार

वैवाहिक समाचार

७. वधू चाहिये- आर्य परिवार, संस्कारित, आयु- २८ वर्ष, कद-५ फुट ८ इंच, बी.टेक. सरकारी सेवा में कार्यरत प्रतिष्ठित परिवार के युवक हेतु आर्य परिवार की सुशिक्षित एवं संस्कारी युवती चाहिए। **सम्पर्क- ९४१३६१०९२८, ९४१४४७८२९६**

७. वर चाहिये- आर्य परिवार, संस्कारित, जन्मतिथि- २०.५.१९९४, कद-५ फुट २ इंच, शिक्षा- बी.टेक प्रतिष्ठित परिवार की युवती हेतु आर्य परिवार का सुशिक्षित एवं संस्कारी युवक चाहिए। **सम्पर्क- ९५५५४४५६९९**

चुनाव समाचार

१०. आर्यसमाज, बांदीकुई का चुनाव सम्पन्न हुआ, जिसमें **प्रधान**- श्री रामस्वरूप आर्य, **मन्त्री**- श्री राजेन्द्र प्रसाद तंवर, **कोषाध्यक्ष**- श्री रामावतार पटवारी को चुना गया।

पाठकों की प्रतिक्रिया

सम्मानीय सम्पादक जी, नमस्ते। स्मृति-शेष आचार्य श्री उदयवीर जी शास्त्री का सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास पर आधारित समीक्षात्मक लेख समीक्षा के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्व का भी है। इस महत्त्वपूर्ण लेख को प्रकाशित करने पर मेरी हार्दिक बधाई। साथ ही निवेदन है कि यदि आचार्य जी की टिप्पणियों के अनुसार अलग से शंकराचार्यों की विभिन्न मठों के अनुसार सूची भी प्रकाशित करवा देवें तो उपयोगिता और बढ़ जाये।

विनोद कुमार मित्तल, बैंगलोर

आदरणीय सम्पादक जी, प्रधान जी जैसा मैंने देखा श्री प्रभाकर जी आर्य का लेख पढ़ कर आँखे नम हो गईं। आबू में उनके देहान्त के समाचार मिले थे। आँखों से आँसू नहीं रुक रहे थे। ईश्वर, उनकी जगह मुझे ले जाता तो कितना अच्छा होता। काश... ऐसा सम्भव हो पाता? धर्मवीर जी का विकल्प नहीं है आज तक.... इतनी सरलता, भ्रातृत्व भाव, विद्वत्ता मैंने किसी में भी नहीं पाया। शत शत नमन।

उमेश राठी, नागपुर

साधक, बुद्धि और विवेक का उपयोग करें

कन्हैयालाल आर्य

साधक के जीवन में तीन बातें होनी चाहिएँ- १. दोषनिवृत्ति, २. गुणाधान, ३. हीनांगपूर्ति। हमारे चित्त में जो दुर्गुण, दुराचार के संस्कार पड़े हैं उनको यम, नियमों के पालन द्वारा निकालना दोष-निवृत्ति है। मैत्री, करुणा, मुदिता, सहजता, सरलता, परोपकार आदि सद्गुणों को धारण करना गुणाधान है। जिस कमी के कारण हम दीनहीन तथा तुच्छ हो रहे हैं, मृत्यु, जरा, व्याधि के शिकार हो रहे हैं, उस कमी को पूर्ण करना हीनांगपूर्ति है। वह कमी है आत्मज्ञान की।

मनुष्य में कुछ न कुछ दोष अवश्य होते हैं, उन दोषों को यम, नियमों को पालने, प्राणायाम, ध्यान से निकाल सकते हैं। जब हम दोषों को निकालते जायेंगे तब मन रूपी पात्र में स्थान रिक्त हो जायेगा, संकल्प-शक्ति से रिक्तस्थान को भरने के लिए सद्गुणों का प्रवेश कर मन की प्रवृत्ति को उत्तम बनायें। हमें अपने मन के दोषों को छिपाना नहीं होगा। यदि छिपायेंगे तो और अधिक बढ़ जायेंगे। यदि उन दोषों पर विचार कर प्रायश्चित्त करेंगे, केवल प्रायश्चित्त ही नहीं बल्कि पुनः उन दुष्ट कार्यों को न करने का संकल्प करेंगे तो वे दोष दूर होते जायेंगे। यदि आप परमात्मा को अपना मानोगे तो दोष दूर करने में सरलता होगी। प्रत्येक बुरे कार्य को करने से पूर्व यह विचार करेंगे कि हमें परमात्मा देख रहा है और इस बुरे कार्य का दण्ड भी मुझे निश्चित रूप से मिलेगा, तो हम बुरे कार्य करने से बच पायेंगे।

हम संसार की जितनी भी बातें कर लें, हम अपूर्ण ही रहेंगे, क्योंकि हम स्वयं अपूर्ण हैं, अल्पज्ञ हैं। अल्पज्ञ और अपूर्ण कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिये संसार हमें पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं करा सकता। यह सृष्टि (प्रकृति) सत्य है अर्थात् इसकी सत्ता है। जीवात्मायें सत् भी हैं चित् भी हैं। आत्माओं का अस्तित्व है, चेतनता भी है, लेकिन इनमें आनन्द नाम की वस्तु का अभाव है, परन्तु परमपिता परमात्मा सच्चिदानन्द अर्थात् सत् चित् आनन्द है। जिसके पास जो वस्तु होती है, वही उसका स्वामी होता है और उससे ही प्राप्त की जा सकती है। प्रकृति में न चेतनता है न आनन्द है। जीवात्मा में चेतनता तो है, परन्तु आनन्द नहीं है। परमपिता परमात्मा का अस्तित्व है, चेतना है और आनन्द भी है, इसलिये परमात्मा की शरण में जाने से ही आनन्द की प्राप्ति होगी। जैसे यदि हम अग्नि के पास जायेंगे तो हमें ऊष्मा मिलेगी। जल के पास जायेंगे तो शीतलता मिलेगी। इसी प्रकार परमात्मा के पास जायेंगे तो हमें आनन्द की प्राप्ति होगी, क्योंकि परमपिता परमात्मा आनन्दस्वरूप है।

संसार की बातों में राग-द्वेष, भय, शोक, ईर्ष्या, भय, ग्लानि, घृणा होती है। परमात्मा की बातों से उदारता, नम्रता, प्रसन्नता, भक्ति तथा अमृतरस की प्राप्ति होती है। इसे आप एक दृष्टान्त से समझ सकते हैं-

बहुत दिनों पहले की बात है कि एक राजा ने अपने मन्त्री से कहा- मुझे कोई ऐसी युक्ति, ऐसा उपाय बताओ जिससे कि मैं सदा सुख में मग्न हो जाऊँ। मन्त्री ने कहा, ''मैं ऐसी कोई युक्ति, उपाय नहीं जानता।'' मन्त्री ने पूरे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी व्यक्ति सदा मस्त रहने वाली युक्ति या उपाय जानता हो, वह हमें सूचित करे राज्य की ओर से पारितोषिक दिया जायेगा। काफी समय तक कोई व्यक्ति आगे नहीं आया। कुछ दिनों के पश्चात् राजा अपने राज्य में घूमता हुए एक साधु बाबा के पास पहुँचा। राजा ने सोचा ''सदा मस्त रहने वाली युक्ति या उपाय इस साधु बाबा से पूछना चाहिये।'' अतः राजा ने सन्त से पूछा- ''महाराज! मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये कि मैं सदा सुखी रहूँ। अभी तो मुझे कोई कष्ट नहीं है परन्तु भय लगता है कि कहीं राज्य छूट न जाये। बाबा जी कुछ ऐसी कृपा करो कि यह भाग्य सदा ही ऐसा रहे।''

सन्त बड़े ज्ञानी थे। वह राजा की मनोदशा को भाँप गये। अपनी कुटिया के अन्दर गये, दो कागजों पर कुछ लिखा और उन दोनों कागजों को राजा को देते हुए बोले कि ''जब तुम अपने आपको बहुत सुखी अनुभव कर रहे हो, पूरी तरह निश्चिन्त हो अपने आप को सौभाग्यशाली

मानो तो कागज़ नं. १ को पढ़ लेना और जब अपने आपको बहुत दु:खी मानो, चारों और अन्धेरा दिखाई दे रहा हो, तब इस कागज़ नं २ को पढ़ लेना, परन्तु ध्यान रखना इन दोनों कागज़ों को केवल अत्यधिक सुख और अत्यधिक दु:ख के समय ही पढ़ना और इन दोनों कागजों को सुरक्षित रख लेना। ये दोनों कागज़ लेकर राजा महल के अन्दर चला गया और उन्हें अपनी तिजोरी में बन्द करके रख दिया।

कुछ दिन व्यतीत हो गये। प्रत्येक प्रकार का सुख राजा को मिल रहा था। पत्नियों का सहयोग मिल रहा था, मन्त्री, सेनापति आज्ञा के अनुसार चल रहे थे। राज्य में धन-धान्य की कमी नहीं थी। उसने अनुभव किया कि मैं बहुत सौभाग्यशाली व्यक्ति हूँ। चलो, आज उस बाबा जी द्वारा दिया गया कागज़ नं १ को पढ़ते हैं। राजा ने तिजोरी खोली और कागज नं. १ निकाला और पढ़ा। उसमें लिखा था 'आखिर कब तक।'

यह पढ़ते ही राजा का अंहकार कुछ कम हुआ। यह सुख यह शान-शौकत कब तक रहेगी? सुख सदैव किसी के अधिकार में नहीं रहता। सुख-दु:ख तो जीवन के साथ लगे रहते हैं। इस कागज़ नं १ पर लिखे ''आखिर कब तक'' ने राजा को बुरी तरह से विचलित कर दिया। कुछ समय पश्चात् धीरे-धीरे वह उद्विग्नता समाप्त हुई, मन शान्त हुआ।

कुछ दिन ठीक-ठाक चलता रहा। छोटी रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ी रानियाँ उससे द्वेष करने लगीं। इतने में मन्त्री ने आकर सूचना दी कि पड़ोस के सभी राजा हमारी सुख-समृद्धि से द्वेष के कारण आपस में मिल गये हैं। सेनापतियों में परस्पर फूट का मामला भी सामने आ गया था। कुछ मन्त्री विद्रोह पर भी उतर रहे थे। प्रजा में भी असन्तोष के भाव उभरने लगे थे। सब ओर से परिस्थितियाँ विपरीत होती जा रहीं थीं। राजा ने अनुभव किया कि मैं चारों ओर से घिर चुका हूँ। राज्य के बाहर और अन्दर दोनों ओर। उस समय राजा को स्मरण हो आया कि साधु बाबा ने कहा था कि जब अत्यधिक दु:ख का अनुभव करो तब कागज़ नं २ पढ़ लेना। राजा ने तिजोरी खोली। कागज़ नं. २ निकाला उसको पढ़ा। उसमें लिखा था 'आखिर कब तक' जब राजा आनन्द में था तब भी साधु बाबा ने कागज पर लिखा 'आखिर कब तक' और आज राजा बहुत अधिक दु:खी है, तब भी लिखा है 'आखिर कब तक'। यह पढ़ते ही राजा का चित्त शान्त हो गया। हमारी भी स्थिति लगभग ऐसी ही रहती है। हम भी अपने जीवन में लेते-देते, खाते-पीते, हँसते-रोते, सुख-दु:ख में यह विचार करें कि 'आखिर कब तक' तो हमारे लिये इन जंजालों से मुक्ति पाना सरल हो जायेगा। भाग्यशाली हैं वे लोग जो सन्तों के ऐसे वचनों को समझ पाते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में हमें सुख-दु:ख में कैसे रहना चाहिये उसका वर्णन किया है-

''मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम्'' (१.३३) सुखी और ऐश्वर्य सम्पन्न सभी प्राणियों के प्रति मित्रता की भावना करें, दु:खी प्राणियों के प्रति दया की भावना करें, पुण्यात्माओं के प्रति हर्ष की भावना करें और पाप करनेवालों के प्रति उपेक्षा करें। इससे चित्त में निर्मलता आती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में इस सूत्र का व्याख्यान इस प्रकार किया है-

इस संसार में जितने मनुष्य आदि प्राणी सुखी हैं, उन सबके साथ मित्रता करना। दु:खियों पर कृपा-दृष्टि रखना। पुण्यात्माओं के साथ प्रसन्नता और पापियों के साथ न प्रीति, न वैर रखना। इस प्रकार के वर्तमान से उपासक के आत्मा में सत्यधर्म का प्रकाश और उसका मन स्थिरता को प्राप्त होता है।

समाज में रहते हुए सुखी-दु:खी, पुण्यात्मा-पापात्मा, मित्र व शत्रु आदि सब प्रकार के मनुष्यों से सम्पर्क होता रहता है। सामान्य जनों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अनुकूल व्यक्तियों से राग, प्रतिकूल व्यक्तियों से द्वेष, सुखी व्यक्तियों को देखकर ईर्ष्या, दु:खी व्यक्तियों को देखकर घृणा-भाव आदि करते हैं। ये सभी रागादि युक्त भावनाएँ चित्त को विक्षिप्त व मलिन करने वाली होती हैं। यदि हम ईश्वर के सच्चे पुत्र बनना चाहते हैं तो लोक में जो सुखी प्राणी हैं उनसे ईर्ष्या न करके मित्रता करनी

चाहिये। दु:खी प्राणियों से घृणा न करके उनके प्रति करुणा, दया भावना रखनी चाहिये। उनके प्रति हार्दिक सद्भावना सदा रखें, क्योंकि उनके दु:ख दूर करने का उपाय करने व सन्मार्ग बताने से चित्त में शान्ति भाव बना रहता है और इसी प्रकार जो पुण्यात्मा हैं, उनके प्रति हर्ष-भावना तथा पापात्माओं के प्रति उपेक्षा-भाव सदा रखें। जो पापी-व्यक्ति होते हैं, उनको सन्मार्ग पर चलाने की बात कहनी चाहिये, परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वे शत्रुतावश बाधक न बन जायें। इस प्रकार से लौकिक व्यवहार करने से हमारा चित्त स्वच्छ व शान्त रहेगा।

जीवन का जो भी समय शेष है, उसी का हमें सदुपयोग करना होगा। सावधान होकर प्रभु की प्राप्ति के लिये कटिबद्ध रहना होगा। प्रभु को प्राप्त करने के लिये जिन-जिन उपायों की हमें आवश्यकता है, वे सब प्रभु-कृपा से हमें प्राप्त हैं। प्रभु के दिये हुए शारीरिक साधनों और पदार्थों का हमें सदुपयोग करना है। वही व्यक्ति मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल होता है जो प्रभु के दिये हुए साधनों का सदुपयोग करता है और जो दुरुपयोग करता है उसका पतन निश्चित है। यदि हम सदुपयोग करेंगे तो अगले जन्म में मानव से भी उच्चकोटि की योनियों (यथा देवता, ऋषि) को प्राप्त करेंगे। दुरुपयोग करने पर निम्न योनियों (यथा पशु, पक्षी, जलचर, नभचर) को प्राप्त होंगे।

मन, बुद्धि, इन्द्रियों का संयम करके उनको संसार के विषय भोगों से हटाकर परमात्मा में लगा देना उनका सदुपयोग करना है और इसके विरुद्ध प्रमाद, पाप और विषय-भोगों में लगाना दुरुपयोग है। परमपिता परमात्मा ने हमें बुद्धि और विवेक दिया है, यदि हम इनके होते हुए भी उनका उचित उपयोग न करें तो हमारी मूर्खता होगी।

यह मानव चोला सुकर्मों से प्राप्त हुआ है, ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। अत: हमारी बुद्धिमत्ता यही है कि बुद्धि और विवेक का प्रयोग करते हुए, उचित और अनुचित का विचार करते हुए अपने जीवन को सेवा, स्वाध्याय, साधना और ईश्वर-समर्पण में लगायें ताकि मानव जीवन सार्थक हो सके।

गुरुग्राम, हरियाणा।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

संस्था - समाचार

हमारा शैक्षणिक भ्रमण पर्वतारोहण...

गिरौ कदा गमिष्यामः

जिस स्थान पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की अस्थियाँ मृदा में मिलायी गयीं उसे हम 'ऋषि उद्यान' के नाम से जानते हैं। आनासागर झील के तट पर स्थित ऋषि उद्यान में सदा सुरम्य वातावरण रहता है। यह स्थान चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है जो इसकी सुन्दरता को चार चाँद लगाते हैं। ये पर्वत ही 'अरावली पर्वत-शृंखला' के नाम से विख्यात हैं। हमारे बचपन के चित्र कलाकारी भी कुछ ऐसे ही होते थे, जिसमें ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हों, ढलता हुआ सूरज हो, पहाड़ों से नदी निकल रही हो, पक्षी समूह में उड़ रहे हों एवं एक छोटी-सी झोंपड़ी या घर हो जहाँ से रास्ता नदी की ओर जाता हो, यहाँ भी कुछ ऐसे ही नजारे हैं। जब हम इन पर्वतों की ओर देखते हैं तो इच्छा होनी स्वाभाविक ही है कि ''काश हम वहाँ भी कभी घूमने जायें।''

पिछले वर्ष (२०१९ में) जब हमारे भ्राता श्री प्रभाकर जी (व्यवस्थापक, गुरुकुल ऋषि उद्यान) ने हमसे कहा कि ''गुरुकुल के विद्यार्थी भी वर्षा-ऋतु में पर्वतारोहण में जाया करते हैं और इस वर्ष (२०१९ में) हम भी जायेंगे'' इतना सुनते ही विद्यार्थियों की प्रसन्नता की सीमा न रही। पर्वतारोहण की योजना बनायी गई, परन्तु अत्यधिक वर्षा के कारण पहाड़ों में भूस्खलन होने लगा तो प्रशासन द्वारा भी पहाड़ों पर जाने की रोक लगा दी गयी, जिस कारण दिनाङ्क का निर्धारण नहीं हो सका और यात्रा स्थगित कर दी गई। विद्यार्थी उत्साहित होकर एक प्रश्न अक्सर पूछा करते ''गिरौ कदा गमिष्यामः?'' अर्थात् हम पहाड़ पर कब जायेंगे। आखिर एक दिन इस प्रश्न का उत्तर मिला ''श्वः गमिष्यामः'' अर्थात् ''कल जायेंगे'', परन्तु एक शर्त थी कि मौसम खराब न हो। हमने तैयारियाँ कर तो लीं, परन्तु मौसम ने साथ न दिया। इस तरह पिछले वर्ष की हमारी भ्रमण-योजना विफल गयी।

जब किसी बालक को किसी खिलौने से खेलने की अत्यन्त इच्छा हो और उसे वह खिलौना लाकर दे दिया जाय तो वह बहुत प्रसन्न हो जाता है, परन्तु यदि उसे न मिले तो? ठीक ऐसा ही हमें लगा, हमारा उत्साह, निराशा में बदल गया। हमारे आचार्यों ने कहा कि ''कोई बात नहीं, चले जाना, इस वर्ष नहीं तो अगले वर्ष सही।''

जनवरी २०२०, हम सभी विद्यार्थियों को विश्व पुस्तक मेला एवं दिल्ली घुमाया गया। अब हमें प्रतीक्षा थी वर्षा-ऋतु की।

१६ अगस्त, २०२० रविवार रात हमारी वाग्वर्धिनी सभा चल रही थी। सभा के समाप्त होने पर हमें यह वाक्य सुनने को मिला जिसकी हमें प्रतीक्षा थी। ''श्वः गमिष्यामः'' इतना सुनते ही हम विद्यार्थियों के मुखमण्डल पर मुस्कान ने अधिकार जमा लिया। जिन्हें नींद आ रही थी उनकी आँखों में अब एक विशेष चमक थी। अब सभी ने सूचनाओं एवं शर्तों को ध्यानपूर्वक सुना। मुख्य शर्त तो यही थी कि मौसम खराब न हो। कुछ आवश्यक वस्तुएँ जैसे रस्सी, अखबार, चाकू, आवश्यक दवाइयाँ, लम्बी-चौड़ी प्लास्टिक की शीट्स, माचिस आदि रखने के लिये भिन्न-भिन्न विभाग बना दिये गये तथा प्रत्येक विद्यार्थी के पास पैरों में जूते, पीठ पर लटकाने का थैला, २ लीटर से अधिक पानी, अपना भोजन आदि होना आवश्यक था। कुछ तैयारियाँ रात में ही सोने से पहले कर ली गयीं। कई बार तो ऐसा होता है कि रात में विलम्ब से सोने पर सुबह जल्दी नींद नहीं खुलती। विद्यार्थियों को प्रतिदिन सुबह ४ बजे उठना होता है जिसके लिये घण्टी भी बजती है, लेकिन अगले दिन कुछ विद्यार्थी तो देर से सोने के उपरान्त भी घण्टी लगने से पहले ही उठे हुए थे, जैसे पर्वतों ने पहले ही आवाज लगाकर उठा दिया हो। सभी अपना नित्यकर्म-व्यायाम, स्नान, यज्ञ, प्रवचन श्रवण फिर प्रातराश करके तैयार हो गये। हम कुल नौ व्यक्ति थे- भ्राता श्री प्रभाकर जी, भ्राता श्री सोमेश जी, ब्र. विवेक जी, ब्र. सुभाष जी, ब्र. प्रताप जी, ब्र. अमित जी, ब्र. हरीश जी, ब्र. नवनीत जी तथा मैं। प्रातराश के ठीक बाद हमें ऋषि उद्यान से पर्वतों की ओर कूच करना था। वहाँ तक हमें वाहनचालक श्याम जी छोड़ने के लिये चलने वाले थे, परन्तु उन्हें विलम्ब हो रहा था। इतने में सूर्य देवता ने अपने ताप को बढ़ा लिया। भ्राता श्री प्रभाकर जी (व्यवस्थापक जी) का आदेश आया कि सभी प्रकोष्ठ संख्या ५ में इकट्ठा हो जायें। भ्राता जी ने कहा कि ''सूर्यदेव की तेज किरणें दर्शन दे चुकी हैं, आसमान बिल्कुल साफ है, कोई बादल नहीं जो हमारी मदद करे, ऐसे में जाना अत्यन्त कठिन होगा, सबकी

त्वचा भी जल सकती है और तो और चढ़ाई करने में भी समस्या होगी।'' इस तरह की परिस्थितियों का बखान करते हुये उन्होंने पूछा ''क्या फिर भी आप चलना चाहोगे?'' स्थिति कुछ ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो कोई सेनानायक अपने सैनिकों का हौसला/उत्साह बढ़ाने के लिये पहले कुछ समस्याओं से अवगत कराते हुए उनके धैर्य की जाँच कर रहा हो। हमने भी अपने सेनानायक को निराश न किया, कह दिया ''हम तैयार हैं।''

कुछ ही समय में वाहनचालक श्याम जी आ गये। उन्होंने हमें पहाड़ की तलहटी तक छोड़ दिया। बिना समय गँवाये हमने उनका धन्यवाद करते हुए पहाड़ में जो पगडण्डी बनी हुई थी उस पर चलना प्रारम्भ कर दिया। यह पगडण्डी पहाड़ की चोटी तक नहीं जाती थी, परन्तु हमें तो चोटी पर जाना था, अत: कुछ दूर तो हम इन पर ही चले। कुछ दूर चलकर हम रुके, फिर भ्राता प्रभाकर जी ने हम सभी को सम्बोधित करते हुये कहा- ''कब तक हम दूसरों की बनाई पगडण्डी पर चलते रहेंगे, जो हमें उस शिखर तक भी नहीं पहुँचा सकतीं जहाँ हमें जाना है।'' (यह वाक्य अति गहरे अर्थों को लिये हुए है जो अपनी विशेष व्याख्या की माँग कर रहा है, इसका विश्लेषण यहाँ न करके इसमें अन्तर्निहित भावों को समझने का कार्यभार आप पाठकों पर छोड़ता हूँ।) इतना सुनते ही हमारे मस्तिष्क में इस वाक्य के परिप्रेक्ष्य में अर्थों को लिये हुए कई भाव उभरे और हमने पगडण्डियों को छोड़ सीधी चढ़ाई कर चोटी की ओर बढ़ने का निर्णय लिया। चढ़ने से पहले भ्राता जी के कुछ निर्देश इस प्रकार थे- ''(क) सभी अपने पैर जमा कर चलेंगे। (ख) खिसकनेवाले पत्थरों को परख कर चलेंगे। (ग) काई-फिसलन को देखकर चलेंगे। (घ) कँटीली झाड़ियों से बचकर चलेंगे। (ङ) अकेले कोई भी नहीं चलेंगे, कम-से-कम दो एकसाथ अवश्य रहेंगे।'' इतना बोलकर सबकी जोड़ी बना दी गयी। फिर सबने एक नज़र उस चोटी की ओर देखा, निष्कर्ष यही निकला कि जो अब तक हमारा आह्वान कर रहा था, वही अब हमें चुनौती देना चाहता है। सबने कमर बाँध ली, बैग टाँग लिये, जूते कस लिये, फिर वैदिक धर्म का नारा लगाया तथा चुनौती स्वीकार की। यहाँ बादलों ने सूर्य देवता की तेज किरणों से बचने में हमारी मदद की।

अब हम पगडण्डियों को छोड़ चुके थे तथा सीधा चोटी की ओर बढ़ रहे थे। पीछे से भ्राता जी के निर्देश भी हो रहे थे। जो पहले भी पहाड़ों पर चढ़ चुके थे, उनको तो कोई समस्या नहीं हो रही थी, परन्तु जो पहली बार पर्वतारोहण में आये थे, उनको थोड़ा डर अवश्य लग रहा था। किसी तरह हम आधा तो चढ़ आये तथा जो अति उत्साहित थे, वे चढ़े ही जा रहे थे। फिर पता चला कि भ्राता सोमेश जी ने प्रातराश ही नहीं किया, इस कारण वह बहुत थक गये थे, अत: सबको रुकने के लिये बोला गया, सभी रुक गये क्योंकि एक को छोड़कर तो आगे नहीं बढ़ सकते थे ना! भ्राता सोमेश जी बोले- ''आप सब चलो मैं नहीं चल सकता, मैं वापस चला जाता हूँ।'' वापस जाना अत्यन्त कठिन था। इतने में भ्राता प्रभाकर जी ने कहा- ''जब तक व्यक्ति के पास विकल्प होता है तब तक थकान होती है, परन्तु यहाँ से वापस जाना तो अति कठिन है, चोटी की ओर बढ़ने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं।'' इतना सुनने के बाद भी हम कुछ मिनट बैठे रहे तथा भ्राता सोमेश जी विचार कर रहे थे, उनके मन में क्या भाव उठे यह तो नहीं पता परन्तु फिर वह उठे तथा चढ़ाई प्रारम्भ की। अब तक की यात्रा में वह सबसे पीछे-पीछे चल रहे थे, परन्तु अब सबसे आगे चलने लगे। इससे यह तो अवश्य पता चलता है कि ''मनुष्य की इच्छाशक्ति बहुत प्रबल होती है, जैसा वह सोचता है वैसी ही उसकी शारीरिक क्रियाएँ भी होती हैं।'' वैसे वास्तविकता तो यही है कि पहाड़ों पर चढ़ने में यदि समस्याएँ न हो तो रोमांच का औसत भी गिर जाता है।

हमारे साथ बहुत अधिक समस्याएँ तो नहीं थीं, परन्तु समस्याओं का सिलसिला अवश्य चलता रहा। अबकी बार मेरे जूते नीचे से कबड़ (फट) गये, हम फिर रुके। हमारे बैगों में दो जोड़ी चप्पलें भी थीं, परन्तु इस चढ़ाई में उनका कोई प्रयोग नहीं हो सकता था, फिर एक उत्तरीय वस्त्र जो कि ब्र. अमित जी के बैग में था उसे बाँध लिया, परन्तु कोई लाभ न हुआ। कपड़ा मुलायम/नर्म था जिसके कारण मेरे पैरों की पकड़ नहीं बन पा रही थी और-तो-और मेरे पैर पहले से अधिक फिसलने लगे तथा बन्धन भी खुल गया, मैंने सन्तुलन बनाते हुये उनको खोलकर अपने बैग में डाल लिया ताकि कचरा न फैले और खाली पैर ही चलने लगा। जब लक्ष्य सामने हो तो गति स्वाभाविक ही बढ़ जाती है, हमारे साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ। चोटी अब सामने ही थी तो सबकी गति

बढ़ गयी, देखते-ही-देखते एक-एक करके सबने ध्यानपूर्वक प्रयत्न से चोटी को अपने नीचे कर ही लिया। अब हम उस पहाड़ के ऊपर थे जो हमें चढ़ने से पूर्व ही सावधान कर रहा था लेकिन अब वही पहाड़ हमारी सफलता, हमारी प्रसन्नता में शामिल था, हमें बधाई दे रहा था तथा कह रहा था ''लो देखो इन खूबसूरत नज़ारों को जो मैंने तुम सबको दिखाने के लिये सजाकर रखे थे।'' हमने अपना 'ओ३म् का ध्वज' लगा दिया, ताजी साँस ली, जल पी लिया, कुछ चित्र खिंचवा लिये, फिर आगे बढ़े जहाँ प्रकृति के अन्य सुन्दर दृश्य हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमारे कुछ भ्राताओं को तो भूख लग गयी थी, जिनको अभी तक भूख का अनुभव/अहसास नहीं हुआ था उनका पेट या तो प्रकृति की सुन्दरता को ही देखकर भर रहा था या तो उन्होंने प्रातराश ही अधिक किया था, वैसे अभी तक भोजन का समय भी नहीं हुआ था।

हमें उस चोटी पर चलते हुये अब लगभग डेढ़ घण्टे से भी अधिक समय हो (लगभग १२ बजे) चुका था, अब तक हम केवल वन-भ्रमण करते हुये उन विचित्र वृक्षों, पौधों आदि की सुन्दरता एवं हरियाली को निहारते हुये चल रहे थे। इस डेढ़ घण्टे के मध्य में हमने एक ऐसे स्थान को भी देखा जहाँ एक जैसे वृक्ष लगभग समान दूरी पर व्यवस्थित रूप से लगे हुये थे, यह स्थान सुन्दर भी था और आश्चर्यजनक भी, क्योंकि इन वृक्षों को किसी ने लगाया नहीं था, ये स्वाभाविक ही व्यवस्थित लगे हुये थे। इस स्थान को देख विचार तो आया कि यहाँ झोंपड़ी/कुटिया बनाकर रहा जा सकता है, परन्तु इस विचार को हम एक-दूसरे से साझा करते हुये आगे बढ़ गये।

मध्याह्न के लगभग १२ बज गये थे जो कि हमारा भोजन का समय होता है। भोजन करने के लिये जलवाले स्थान की तलाश/खोज थी जहाँ बैठकर हम भोजन कर सकें तथा वह स्थान छायादार भी हो, क्योंकि सूर्य की किरणों ने फिर से आक्रमण कर दिया था। ऐसे स्थान की खोज करते हुये हम अभी एक ऐसे स्थान पर थे जहाँ इस पहाड़ का अन्तिम पश्चिमी किनारा, सामने दूसरा पहाड़ तथा दोनों के बीच में खाई। सम्भवत: नीचे खाई में जल हो सकता है, जिसके किनारे बैठकर हम भोजन कर सकते हैं ऐसा सोचकर हम नीचे की ओर बढ़ने लगे। यह अधिक गहरा तो नहीं था, परन्तु जोखिमपूर्ण अवश्य था, क्योंकि हम बिल्कुल सीधा उतर रहे थे। खाली पैर होने के कारण मेरे पैरों में झाड़ियाँ एवं पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े चुभ रहे थे। नीचे उतरे तो काँटेदार झाड़ियों के अलावा अन्य कुछ नहीं मिला, मुझे यहाँ चप्पलें पहननी ही पड़ीं। हम पीछे नहीं हटे, किसी प्रकार इन काँटेवाली झाड़ियों को पारकर अगले पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ कर दी। अभी-अभी हमने खड़े पहाड़ की उतराई की थी तथा अब बिल्कुल सीधे खड़े पहाड़ पर चढ़ रहे थे, किन्तु यह निर्णय वहाँ काँटों में भूखे फँसे रहने से अच्छा था। इस चढ़ाई में तो सबको कठिनाइयाँ हुईं बहुत ध्यान से आगे बढ़ना था, हाथ-पैर जमाने के लिये पर्याप्त स्थान भी नहीं मिल रहा था, परन्तु इस बार कोई नहीं डरा, सभी धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। देखते-ही-देखते हमने यहाँ भी जीत को अपने खाते में जोड़ लिया। यहाँ भी अति सुन्दर दृश्य था। समूह-चित्र खिंचवाया गया। अब तो सबको भूख लग गयी थी तथा कुछ तो थक भी गये थे अत: यहाँ कुछ मिनट बैठे। ऊपर पानी वाला कोई स्थान तो नहीं मिला, परन्तु सूर्य देवता बादलों से बार-बार निकल कर अपनी किरणों से हमला कर रहे थे इसलिये हमें छायादार स्थान तो ढूँढना ही था। हमने यहाँ से पलायन किया तथा कुछ ही दूर चलकर हमें वह स्थान मिल गया। बिना विलम्ब किये सबने अपना स्थान चुना, अखबार आदि बिछाया, भोजन निकाला, हाथ धोकर भोजन का मन्त्रपाठ किया। तदुपरान्त भोजन आरम्भ किया।

कहते हैं ''जब भूख बहुत तेज हो, तो सूखी रोटी भी बहुत स्वादिष्ट लगती है'', वैसे तो हम स्वादिष्ट भोजन ही लेकर गये थे परन्तु प्रकृति की गोद में बैठकर भोजन करने का वह एक-एक निवाला अत्यन्त स्वादपूर्ण एवं आनन्दमय बीत रहा था। भोजन करते हुए अभी तक की यात्रा के अनुभवों को लेकर कई विचार मस्तिष्क में चल रहे थे जो वास्तव में ध्यान देने योग्य थे। प्रथम तो यह कि कभी-भी पर्वतारोहण या वन आदि भ्रमण के लिये जाने से पहले उस यात्रा की अच्छी तैयारी होनी ही चाहिये। थैला अधिक भारी न हो, परन्तु कुछ आवश्यक वस्तु जो आपातकाल में काम आ सकती हैं जैसे- रस्सी, चाकू, माचिस, दवाइयाँ आदि अवश्य ही साथ होनी चाहियें। दूसरा विचार था कि इस प्रकार के भ्रमण में अकेले नहीं जाना चाहिये, सदा साथ में मित्र अथवा साथी होने ही चाहियें, इसका पहला कारण तो यह है कि बिना साथी के ऐसे भ्रमण का आनन्द ही नहीं आता, क्योंकि

यदि साथी न हो तो हँसी-मजाक किसके साथ करेंगे, कुछ देखकर कुछ बोलने की इच्छा होगी तो किससे प्रकट करेंगे तथा दूसरा कारण यह है कि यदि अचानक किसी प्रकार का आपातकाल या दुर्घटना हो जाय तो सम्भालने के लिये कोई तो हो, यदि कोई भी न हो या फिर हो परन्तु बिछड़ गया हो तो ऐसे समय में अपने धैर्य, अपने सामर्थ्य तथा अपनी विचारशक्ति को अपना मित्र बना लेना चाहिये। अगला विचार यह उठा कि हम प्रतिवर्ष ऋषि उद्यान में पौधारोपण करते हैं उनकी देखरेख के लिये माली भी नियुक्त किया गया है फिर भी कुछ पौधे ही चल पाते हैं बाकी पौधे मुरझा जाते हैं, परन्तु इन वनों में वही पौधे बड़े अच्छे चल रहे थे जबकि न तो इनको यहाँ व्यवस्थित लगाया गया, न ही देखरेख के लिये माली की नियुक्ति की गयी। यहाँ पर पत्थरों के ऊपर भी वे पौधे एवं वृक्ष लगे हुये थे, इससे यह पता चलता है कि प्रकृति स्वयं को सन्तुलित रखना जानती है। प्रकृति यह भी जानती है कि कहाँ, कौन-सा पौधा/वृक्ष सही चल सकता है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु अच्छी लग रही थी, पेड़-पौधों का अव्यवस्थित लग जाना भी व्यवस्थित था, उनके गिरे हुए पत्ते भी सजे हुये थे, इनका जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे उग जाना भी अच्छा था, परन्तु केवल एक वस्तु ही अच्छी नहीं लगी और वह थी इन वनों में पड़ी हुई प्लास्टिक।

इस पूरे वन में यदि कुछ कचरा था, तो वह था जहाँ-तहाँ फेंकी हुई प्लास्टिक की बोतलें आदि। जिस तरह मूर्ख, बुद्धिमानों के मध्य एवं कोई बुद्धिमान् मूर्खों के मध्य अच्छा नहीं लगता, कुछ वैसी ही परिस्थिति यहाँ भी थी। यह कार्य किसी जानवर, कीट-पतंग या पक्षियों का नहीं था, यह कार्य था मानवों का। मानव शब्द मनु के अपत्य से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है मननशील। परन्तु क्या इतने तुच्छ कार्य के पश्चात् ऐसे लोगों को मननशील कहा जा सकता है? नहीं, ऐसे लोगों के लिये मानव संज्ञा (नाम) उचित नहीं, अतः आज के विचारकों का ऐसे तुच्छ सोच रखने वालों के लिये कोई अन्य संज्ञापद (नाम) का चयन करना चाहिये। हमारी प्रकृति! हमारा पर्यावरण! हमारी धरती! निरन्तर हमारा पालन-पोषण करती है जैसे एक माँ अपने नवजात शिशु का बड़े प्यार से पालन-पोषण करती है तथा बड़े प्यार से दूध पिलाती है, परन्तु हम! हम तो खून पीने लग गये। इस बात को हमें ध्यान में रखना चाहिये कि इस माँ के एक नहीं, अनेक सन्तानें हैं जिनके लिये माँ को जीवित रहना होगा। परन्तु यह अमानव माँ का खून पी, माँ को मार रहा है, यही कारण है कि प्राकृतिक आपदाएँ आती हैं, जिनमें मनुष्यों की बड़ी आबादी का सफाया हो जाता है।

अस्तु! सबने भोजन कर लिया, उदर को शान्ति मिली। लगभग मध्याह्न के डेढ़ बज गये थे, हमें ४:३० बजे तक ऋषि उद्यान वापस पहुँचना था, चूँकि ४:३० से ५:३० तो हमारा वॉलीबॉल का खेल होता है, पश्चात् सांयकालीन यज्ञ में भी उपस्थित होना था। अनुमानतः लगभग डेढ़ घण्टे तो उतरने में लग ही जाते तथा अभी कुछ अन्य वनों का भ्रमण शेष रह गया था। अतः हम उठे एवं हमारे भोजन करने से जो कचरा हुआ, उसे अपने बैग में ही डाल लिया ताकि यहाँ की सुन्दरता को कम करने में हमारा योगदान न हो। हम वनों से होते हुए आगे बढ़ रहे थे। ब्र. विवेक जी हमें कारगिल आदि युद्धों एवं भारतीय सैनिकों के कठोर अभ्यासों के बारे में बता रहे थे। वास्तव में हमारे सैनिक भारतमाता की सुरक्षा के लिये अति कठोर तप करते हैं। इन्हीं चर्चाओं के साथ एवरेस्ट की चोटी पर जाने वालों की भी चर्चाएँ होने लगीं। इन चर्चाओं से उनके परिश्रम की कल्पना करते ही मन उत्साहित हो जाता है। २० मिनट तक ऐसी चर्चाएँ करते हुये हमें अजमेर की सीमान्त दीवार दिखी, भोजन के बाद हमने इसी दीवार के ऊपर थोड़ी देर बैठकर पेड़ की छाँव में आराम किया। यहाँ से पूरा अजमेर एक नजर में ही दिख रहा था। सब कुछ बहुत छोटा दिख रहा था। अभी तक हमने इस प्रकार की कई दीवारें देख ली थीं। इन दीवारों की रचना बहुत ही भारी एवं बड़े पत्थरों को व्यवस्थित लगाकर की गयी थी। यही आश्चर्य की बात थी कि इतनी ऊँचाई में इतने भारी-भारी पत्थरों को व्यवस्थित कैसे लगाया गया होगा? इस दीवार की चर्चा के दौरान भ्राता सोमेश जी ने बताया कि भारत में ऐसे कई किले हैं जिनकी दीवारें इस दीवार से भी चौड़ी हैं तथा कुम्भलगढ़ की दीवार इस दीवार से लगभग ५ गुणा अधिक चौड़ी है जिसे पूरे विश्व में चीन की दीवार के बाद दूसरे स्थान पर गिना जाता है। कल्पनाओं का सिलसिला चलता रहा एवं चलते रहने का भी, क्योंकि हम यहाँ भी अधिक न रुके। यहाँ से पलायन के पश्चात् हमें नीचे कहाँ से उतरना है जो थोड़ा सुरक्षित हो ऐसे स्थान का निरीक्षण करते हुये आगे बढ़ रहे थे। इसी तरह चलते हुए बहुत समय हो गया, परन्तु कोई

सरल स्थान जहाँ से हम पुष्कर की ओर उतर पायें नहीं मिल पाया। चलते-चलते हम जिस स्थान पर पहुँचे वहाँ से पुष्कर का बड़ा द्वार दिख रहा था। यहाँ से यदि आगे जाते तो पुष्कर भी पीछे छूट जाता, अत: यहाँ से हम आगे न बढ़े क्योंकि उतरना तो हमें पुष्कर की ओर ही था। जिस स्थान से हमने उतरने का निर्णय लिया वह अति दुर्गम एवं जोखिमपूर्ण था। यह ऊपर से नीचे तक थोड़ा तिरछा था जिसे तिरछा न बोलकर सीधा ही बोला जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

हमें स्पष्ट हो गया कि हम झरने से उतर रहे थे जिससे बारिश होने पर बारिश का पानी नीचे पहुँचता है। दो दिन से बारिश नहीं हुई इसलिये यहाँ पानी नहीं बह रहा था। 'चढ़ने से कहीं अधिक कठिन पहाड़ से उतरना है' यह वाक्य यहाँ पूरी तरह सार्थक हो रहा था। हर चार-पाँच कदम में यह प्रश्न उठ रहा था कि ''अब कैसे उतरा जा सकता है?'' कुछ समय पहले ही हमने भारतीय सेना एवं उनके कठोर अभ्यास आदि विषयों पर चर्चा की थी, जो हमारे मस्तिष्क में अभी भी थी, यही हमारे साहस को बल प्रदान कर रही थी, परन्तु कुछ में तो यह साहस उनके अति उत्साह के रूप में प्रकट हुआ। ''अति सर्वत्र वर्जयेत्'' इस सिद्धान्त को ध्यान में न रखने का परिणाम यह हुआ कि अत्यधिक उत्साह में आकर हम तीन लोगों ने अपने सामूहिक आनन्द को तिलाञ्जलि दे दी। हम आगे आ गये एवं सभी पीछे रह गये। हमारी गति तेज थी इसलिये कुछ ही समय में हम कुछ लोग नीचे आ गये। यहाँ मन्दिर था तथा सामान्य सड़क तक जाने के दो रास्ते थे। सामान्य सड़क पुष्कर की मुख्य सड़क से मिली हुई थी। यहाँ से सामान्य सड़क केवल ५ मिनट एवं सामान्य सड़क से मुख्य सड़क १० मिनट की पैदल दूरी पर थी, परन्तु हम यहाँ से आगे न बढ़े तथा अन्यों की प्रतीक्षा करने लगे। हमारे पास कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं जो किसी आपत्तिकाल में उपयोग हेतु थीं तथा किसी भी समय काम आ सकती थीं किन्तु हमारे आगे आ जाने से इनका उपयोग पीछे छूटे हुओं को आवश्यकता होने पर अनुपलब्ध हो गया था, अत: इस प्रकार हमारा सबको छोड़कर आगे आ जाना समूह के नियमों का उल्लंघन था, जिसका मुझे अनुभव एवं पश्चात्ताप हुआ।

लगभग २० मिनट में भ्राता श्री प्रभाकर जी एवं ब्र. अमित जी आ गये ताकि हम जो आगे आ गये थे कहीं भटक न जायें। नियमों का उल्लंघन करने पर हमें डाँट पड़नी थी, परन्तु पड़ी नहीं, अनुमानत: भ्राता जी ने इसलिये नहीं डाँटा कि कहीं हमारा मजा सजा न बन जाये। भ्राता जी के आने पर पता चला कि भ्राता सोमेश जी का स्वास्थ्य खराब हो गया है अत: वे धीरे-धीरे रुक-रुक कर आ रहे थे एवं अन्य भी उनके ही साथ थे। लगभग २० मिनट बाद भ्राता सोमेश जी को आने के लिये सूचित कर दिया। उनको आने में लगभग १० मिनट लगे। हम सब साथ में सामान्य सड़क तक चलकर किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठने का स्थान बना हुआ था, वहाँ बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। वनों से बाहरी दुनिया में आकर थोड़ा अजीब लग रहा था। कुछ ही समय में हम खेल के समय से पहले ऋषि उद्यान पहुँच गये। ऐसा लगा ही नहीं कि कोई थकान भी है, सभी ने उत्साह से वॉलीबॉल खेला तथा यज्ञ में भी समय से उपस्थित हो गये। चूँकि यह हमारा शैक्षिणक भ्रमण था अत: रात में आत्मनिरीक्षण के समय सबको अपनी शिक्षाओं एवं अनुभवों को बताने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ विद्यार्थियों ने अपने अनुभवों को सबके सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया, पश्चात् भ्राता श्री प्रभाकर जी ने भी अपने अनुभवों को हमारे सामने रखा एवं कई शिक्षाओं से अवगत कराया।

भ्राता श्री प्रभाकर जी का इस पूरी यात्रा में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रहा, क्योंकि सभी तो अपने-अपने लिये गये थे परन्तु भ्राता जी हमारे लिये गये थे, जिसके पास जिम्मेदारियाँ होती हैं उनके पास खुशी कम, दूसरों को सम्भालने का भार अधिक होता है। उन्होंने हर स्थान पर हम सभी का ध्यान रखा, सबको सम्भालते हुये चल रहे थे। उनके अनुभव भी कुछ ऐसे ही थे, उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन के भ्रमण एवं इस बार जब वे शिक्षक हैं, दोनों समय में तुलनात्मक अन्तर एवं क्या नया था, इस बात पर प्रकाश डाला। ''गिरौ कदा गमिष्याम:'' इस प्रश्न का उत्तर तो हमारे इस भ्रमण की कई शिक्षाओं के साथ पूर्ण हुआ। प्रतीक्षा है फिर से किसी ऐसी ही रोमांचक शिक्षाप्रद यात्रा की। अब केवल एक प्रश्न शेष रह गया कि जो हमारा चारों ओर का आवरण (पर्यावरण) है, जो हमारी प्राकृतिक सम्पदायें हैं, जो मनुष्यों के अस्तित्व का आधार हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक हैं, उसे हम केवल अपने छोटे से प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये निरन्तर प्रदूषित कर रहे हैं, क्यों?

ब्र. रोहित आर्य

ÂÚUôÂ·¤æçÚU‡æè âÖæ ¥ÁÙðÚU mæÚUæ Âý·¤æçàæÌ ÂéSÌ·¤ô´ ÂÚU çßàæðá ÀêUÅU

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

०६ अक्टूबर २०२० - डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला

२० से २२ नवम्बर २०२० - ऋषि मेला (१३७वाँ बलिदान समारोह)

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्य. भा.)

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टि

डॉ. रामप्रकाश वर्णी

गताङ्क से आगे प्रश्न 11 का शेष

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने 'सोमपाः' का अर्थ ''ये सोमम् ऐश्वर्यम् ओषधिरसं वा पिबन्ति पान्ति वा ते सोमपाः'' किया है। इसका मतलब यह है कि यहाँ जो 'सोमपाः' शब्द है, वह 'रूढि'-शब्द न होकर एक 'यौगिक' शब्द है। इसलिये इसका 'प्रकृति-प्रत्यय' के विभाग के अनुसार सम्पूर्ण अवयवार्थ 'सोम'='ऐश्वर्य' और 'ओषधि-विशेष' तथा 'पाः' का अर्थ 'पा-पने' इस धातु के अनुसार 'पिबन्ति'=पीते हैं और 'पा-रक्षणे' इस धातु के अनुरोध से 'पान्ति'=रक्षन्ति अर्थात् सुरक्षा करते हैं, यही होता है। इससे पूर्वपक्षी ने जो भारतवर्ष के सभी डॉक्टर्स को आर्यसमाजियों का 'पितर' बतलाने की धृष्टता की है, वह उनकी गन्दी मानसिकता का प्रतीक है। इसमें कुछ भी सारतत्त्व नहीं है। यदि हमारे ऐश्वर्य के रक्षक सभी राजकीय अधिकारीगण और अपेक्षित ओषधि-रस का पान करके जो स्वयं स्वस्थ रहकर के जो रोगियों को रोग के अनुसार ओषधि का सेवन कराकर उनकी रोगों से रक्षा करते हैं, वे देशहितैषी वैद्य और डॉक्टर आदि यदि 'पितर-कोटि' में आ जाते हैं तो पोप जी की क्या हानि हो जाती है? यदि हम उनकी अन्न, जल और फल आदि के द्वारा अवश्य करणीय-कर्त्तव्य के रूप में सेवा-सुश्रूषा रूप 'श्राद्ध-तर्पण' करते हैं तो पोप जी की 'छाती' पर साँप क्यों लेटता है? हम इनसे पूछते हैं कि यदि महर्षि देव दयानन्द के द्वारा बतलाये गये ये 'सोमपाः' पितर नहीं हैं, तो आप सभी सनातनियों के मृत-पितरों में से 'सोमपा-संज्ञक' पितर कौन-कौन हैं, उनमें 'सोमसद, अग्निष्वात्त' और 'बर्हिसद' नामक पितरों की अपेक्षा क्या-क्या विशेषताएँ हैं? मनु ने तो इन्हें केवल 'ब्राह्मणों' का पितर माना है और 'हविर्भुजों' को 'क्षत्रियों' तथा 'आज्यपा' को 'वैश्यों' एवं 'सुकालिनों' को शूद्रों का पितर माना है। ये सभी क्रमशः सोमपा कवि के, 'हविर्भुज' अङ्गिरा के, 'आज्यपा' पुलस्त्य के पुत्र हैं तथा 'सुकाली' जो कि शूद्रों के पितर हैं वे 'वशिष्ठ' के पुत्र हैं। जैसा कि मनुस्मृति अ. ३ श्लोक १९७, १९८ से स्पष्ट है-

''सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः।।
सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः।।''

'शिवपुराण' के अनुसार 'कवि', 'अङ्गिरा', 'पुलस्त्य' एवं 'वसिष्ठ' ये चारों ऋषि गण जब अपनी सगी बहिन सन्ध्या पर कामासक्त होकर स्खलितवीर्य हुए तब उपर्युक्त चारों पितर पैदा हुए हैं। अब इनकी उत्पत्ति अत्यन्त निन्द्य और घृणित है, जैसा कि निम्नांकित श्लोकों से सुस्पष्ट है-

मरीचिप्रमुखाः षड्वै निगृहीतेन्द्रियक्रियः ऋतेक्रतुं वसिष्ठं च पुलस्त्याङ्गिरसौ तथा।।

क्रत्वादीनां चतुर्णां च बीजं भूमौपपात ह। तेभ्यः पितृगणा जाता अपेरमुनिरुत्तमाः।।

सोमपा आज्यापा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः। हविष्मन्तस्सुतास्सर्वे कव्यवाहाऽप्रकीर्तिताः।।

शिव. रुद्र. सती. अ. ३/५४-५६

'मनुस्मृति' इन्हें मनु के पौत्र और शिवपुराण ब्रह्मा के पौत्र बतलाता है। अतः इनका न तो उद्भव ही स्तुत्य है और न कुल-खानदान, फिर ये पूज्य कैसे माने जा सकते हैं? अपि च चारों वर्णों के ये अलग-अलग पितर हैं। इसलिए जिस-जिस वर्ण के ये पितर नहीं हैं उस-उस वर्ण के लोग इनका तर्पण क्यों करें?

'हविर्भुक्' पितरों के सम्बन्ध में ऋषिवर ने स्पष्ट लिखा है- 'ये हविर्होतुम् अत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः' इसका अभिप्राय यह है कि जो सभी प्रकार के मादक द्रव्यों और हिंसा के द्वारा प्राप्त होने वाले पदार्थों को छोड़कर शुद्ध सात्त्विक पदार्थों का सेवन करते हैं, उन्हें ही 'हविर्भुजः' कहा जाता है। इससे साफ जाहिर है कि स्वामी जी को शराबी-कबाबी पितर अभीष्ट नहीं हैं। वे तो उन्हें 'पितर-संज्ञा' देने के भी पक्ष में नहीं हैं। हाँ! सनातनियों के मान्य ये पितर मद्य और मांस के विना तृप्त होते ही नहीं है। जैसा कि मनुस्मृति के इन श्लोकों से स्पष्ट है-

''मुन्यन्नानि पयः सोमो मान्सं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षार-लवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते।। ३/२५७।।''
पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः।
तच्चाभिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रवलवः।। ३/१२३।।

इन श्लोकों का भाव यह है कि 'मुनि-अन्न'=नीवार

आदि दूध, शराब, बिना सड़ा हुआ विकाररहित मांस और बिना ही नमक डाले बनाये हुए पदार्थ स्वभाव से ही 'हवि'=हव्य माने जाते हैं। पितरों का मासिक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये और वह विशेष प्रयत्नपूर्वक अच्छे मांस से करना चाहिये।

पाठकगण स्वयं ही विचार करें कि इस घृणित श्राद्धतर्पण से पुण्य प्राप्त हो सकता है या महर्षिकृत उपर्युक्त अर्थ-सन्दर्भ से? वैसे भी यहाँ एक समस्या यह और उत्पन्न होती है कि क्या 'असंयमी' और 'अभक्ष्यभोजी' व्यक्ति पूजनीय हो सकता है? इसके साथ ही यहाँ हम 'मनुस्मृति' का वह सन्दर्भ भी पाठकों के सामने रख रहे हैं जिसमें इन तथाकथित पितरों को चारों वर्णों में से किसी का भी 'पिता, पितामह, प्रपितामह' नहीं बतलाया गया है। ये तो एक पृथक् समूह और इसकी सन्तानें भी पृथक्-पृथक् हैं। तद्यथा-

''मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः।।
य एते तु गणा मुख्याः पितृणां परिकीर्तिताः।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम्।।''

मनु. ३/१९४,२००।।

अतः वर्णचतुष्टय द्वारा ये बिल्कुल भी पूज्य नहीं हैं। यहाँ उद्धृत किये गये २०० वें श्लोक से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि 'मृतकों' का नाम 'पितर' नहीं है अपितु ऋषियों की सन्तानें ही 'पितर' नाम से अभिहित हुईं हैं। ऋषिवर ने अथर्ववेद १८/२/१ के व्याख्यान-प्रसङ्ग में 'यमाय सोमः पवते' इस मन्त्रांश में आये हुए 'यमाय' पद का अर्थ करते हुए 'यम' को ''ये दुष्टा यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः'' इस निर्वचन के द्वारा न्यायकारी- राजा जोकि दुष्टों को दण्ड देकर सज्जनों की रक्षा करता है, ऐसा 'राजा' वा ऐसे ही गुणों से युक्त 'राज्याधिकारी' माना है। इसमें उन्होंने 'यमो यच्छतीति सतः' (निरुक्त-२/९) इस नैरुक्त यास्क का सहारा लिया है। यास्कीय निरुक्त १०/१९,२० पर उद्धृत ऋग्वेद संहिता के (८/१४/१) ''वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्यः'' इस मन्त्र की व्याख्या में भी उन्होंने जो दुष्टों का नियम करता है उसका नाम 'यम' है। या जो प्रजाओं को नियम में रखता है उसका नाम यम है। इसमें मनुस्मृति का यह प्रमाण भी दृष्टव्य है-

''यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्तेकाले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्।।'' ९/३०७।।

इसका अर्थ है कि जैसे 'यम' अर्थात् परमात्मा समय आने पर प्रिय और द्वेषी सभी प्राणियों को वश में कर लेता है, वैसे ही राजा को भी प्रजा को नियम में चलाना चाहिये। यही उसका 'यमव्रत' है। यहाँ पर बड़े ही स्पष्ट रूप में 'यम' का अर्थ 'नियमों' में चलाने वाला किया गया है। जहाँ तक अथर्ववेद के 'यमाय सोमः पवते' (अथर्व. १८/२/१) मन्त्र का प्रश्न है, वहाँ यह ज्ञातव्य है कि महर्षि देव दयानन्द ने 'यम' शब्द का अर्थ 'न्यायकारी-राजा' करके इस वेदमन्त्र को अनृत और असम्भव देनों ही दोषों से मुक्त करके प्रकाशित किया है। यहाँ हम पूरा मन्त्र और उसका अर्थ दे रहे हैं-

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः।। अथर्व. १८/२/१।।

'यमाय' अर्थात् 'यम' और 'नियमों' की व्यवस्था करनेवाले 'न्यायकारी-राजा' के लिये 'सोमः'= सोमरस, 'पवते'=छानकर पवित्र किया जाता है। इसका तात्पर्य हुआ कि न्यायकारी राजा के लिए ही 'हवि'=अन्न, उत्पन्न किया जाता है। 'यज्ञः'=राष्ट्र 'अग्निदूतः'= ज्ञानवान् पुरुषों को अपना 'दूत' बनाकर और 'अरङ्कृतः'=सुशोभित होकर 'यमं ह गच्छति'= 'न्यायकारी-राजा' की शरण में जाता है। ज्ञात हो कि इस मन्त्र में 'अग्नि' का अर्थ 'ज्ञानवान्-दूत' है, भौतिक ज्वलनशील-आग नहीं, क्योंकि भौतिक अग्नि, 'जड़-पदार्थ' होने के कारण 'दूत-कर्म' कदापि नहीं कर सकती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अर्थ में- अर्थात् 'यम' के 'न्यायकारी-राजा' इस अर्थ में पोप जी की आपत्ति निस्सार है। यतो हि उनकी सनातनी-व्यवस्था में तो राजा को 'पितरों' का भी 'पिता' बतलाया गया है। जैसा कि पितरों के द्वारा राजा 'पुथु' से कहे गये 'महाभारत' के श्लोक से स्पष्ट है-

पितरश्च सुखमासीनमभिगम्येदमब्रुवन्।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासिनः।। द्रोण पर्व महाभारत, अ. ६९/११।।

इसका अर्थ है कि सुख से बैठे हुए 'पृथु' राजा से पितरों ने उसके पास जाकर कहा कि ''तू सम्राट है, क्षत्रिय है, हमारी रक्षा करनेवाला है और हमारा पिता है।'' यहाँ स्पष्ट ही 'रक्षा' आदि करने से 'राजा-पृथु' को पितृगणों ने अपना पिता माना है। अतः महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का ऊपर किया गया अर्थ ही सही है।

शेष अगले अङ्क में...।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ सितम्बर २०२० तक)

१. आर्यसमाज राजाजीपुरम्, लखनऊ २. श्रीमती हेतल सेतिया, गुरुग्राम ३. सुश्री अविका कालड़ा व पंकज कालड़ा गुरुग्राम ४. श्री शिव कुमार माड़ा, नई दिल्ली ५. श्रीमती यशोदा रानी सक्सेना, कोटा ६. श्रीमती मृदुला सक्सेना, कोटा ७. स्वामी योगानन्द, हरिद्वार ८. श्रीमती ईश्वरी देवी बत्रा, सोनीपत ९. श्री भगवानदास गाँधी, सोनीपत १०. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु ११. डॉ. अखिलेश निगम, नई दिल्ली १२. श्रीमती प्रेम खट्टर, फरीदाबाद १३. श्री राजीव बत्रा, लखनऊ १४. श्री प्रियव्रत, नई दिल्ली १५. श्री सौजन्य गोयल, मुजफ्फरनगर, १६. श्री जगदीश शर्मा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ सितम्बर २०२० तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री सतीश चन्द मलिक, नई दिल्ली ३. श्री पञ्चोली ध्रुव महेश भाई, मेहसाना ४. श्री भास्करसेन गुप्ता/श्रीमती सुयशा भास्करसेन गुप्ता अमेरिका ५. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु ६. मन्त्री, आर्यसमाज, सोनीपत ७. श्री प्रवीण सोनी, सोनीपत ८. श्री राज कुकरेजा, सोनीपत ९. श्रीमती रुकमणी कटारिया, सोनीपत १०. श्रीमती उषा गिरिधर, सोनीपत ११. श्री रवीन्द्र कुकरेजा, सोनीपत १२. श्री लाजपत राय मुञ्जाल, सोनीपत १३. श्री प्रवीण चावला, सोनीपत १४. श्री रामस्वरूप मुञ्जाल, सोनीपत १५. श्रीमती द्रौपदी सोनीपत १६. श्री अशोक आर्य, पाटन १७. श्रीमती सन्तोष मुञ्जाल, नईदिल्ली १८. प्रो. बलबीर, दिल्ली १९. श्री जयसिंह गहलोत, जोधपुर २०. श्री सुदर्शन कपूर, पंचकुला २१. श्री राजेन्द्र वत्स व श्रीमती इन्दिरा वत्स, दिल्ली २२. श्रीमती संगीता श्रीवास्तव, गुरुग्राम २३. श्रीमती आशा आर्या, लखनऊ।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**